मेरी यूरोप यात्रा

राहुल सांकृत्यायन

किताब महल

इलाहाबाद

द्वितीय संस्करण, १६४५

मुद्रक
मगनकृष्ण दीक्षित,
दीक्षित प्रेस,
इलाहाबाद

प्रकाशक
किताब महल,
५६-ए, ज़ीरो रोड,
इलाहाबाद

कहाँ क्या ?

द्वितीय संस्करण

राहुलजीकी पहलेकी यह किताब अपनी कई विशेषताओंके कारण आज भी वैसी ही रोचक है। भारतीय चिन्तनाओंमें ओत-प्रोत योरोपियन विद्वानोंके प्रति जो गंभीर श्रद्धा राहुलजीको खींचकर यूरोप ले गई थी उसीने अब उन्हें रूस पहुँचा दिया है। विदेशके व्यक्तियों और वस्तुओंका परिचय देते समय बात-बातमें अपने देशके व्यक्तियों और वस्तुओंकी तुलनामूलक आलोचना करते चलना वह कभी नहीं भूलते। इस दृष्टिसे भी यह यात्रा-वृत्तान्त अभी बहुत दिनों तक ताज़ा बना रहेगा।

मामूली हेरफार। दो-एक जगह टिप्पणी। पुनरुक्तियोंकी काट-छाँट। बस; मैंने और कुछ नहीं किया है।

१२-८-'४५ —नागार्जुन

१

कोलम्बोसे प्रस्थान

पाँच जुलाईको (१६३२ ई०) मैं यूरोपके लिये रवाना हो जाऊँगा, इसका ख्याल मुझे एक वर्ष पहले क्या, एक मास पहले भी नहीं था। भदन्त आनन्द कौसल्यायनने बौद्ध धर्मके प्रचारके लिये लन्दन जाना स्वीकारकर अपनी स्यामकी यात्रा स्थगित कर दी। उनके साथ किसी औरके जानेकी ज़रूरत थी। पहले किसी दूसरेको ही भेजनेका विचार था। कोई अनुकूल आदमी मिल गया होता, तो मुझे इतनी जल्दी इस यात्राको न करना पड़ता। चलनेकी सलाह ठीक हो जानेपर, पासपोर्टका मिलना सहज न था। एक बार इनकार भी हो गया। यही कारण था, जो मैं अपनी यात्राके विचारसे अपने मित्रोंको भी न सूचित कर सका। आचार्य नरेन्द्रदेवजीने तो किसीसे सुनकर इसे अफ़वाह समझा।

२१ जूनको यात्राकी बात पक्की हो गयी। फ्रेंच जहाज़से जाना पहले ही निश्चय कर लिया था। लोग ३० जूनको ही भेज देना चाहते थे; किन्तु मुझे अपने चीनी मित्र श्री वाङ्-मो-लम्के साथ थोड़ा लिखनेका काम पूरा करना था। इसलिये ५ जुलाईको मेसाजेरी-मारीतीम् कम्पनीके जहाज़ दा—र्तञ-ना (D' Artagnan) से जाना निश्चय हुआ। इतनी बड़ी यात्रा

न मैंने ही कभी की थी, न मेरे मित्र भदन्त आनन्दने ही। सीलोनमें इंगलैंडके यात्रियोंकी कमी नहीं है। धार्मिक कठिनाई तो यहाँ छू तक नहीं गयी है, जिससे कि, खारे पानीके स्पर्शसे धर्म नमककी पुतलीकी तरह, गल जाता हो; ऊपरसे प्रवासी अंग्रेजोंकी भाँति सीलोनके शिक्षित इंगलैंडको "घर" (Home) कहते हैं। उन लोगोंसे यात्राके सामान आदिके बारेमें कुछ पूछ-ताछ की; किन्तु हमारी समस्याएँ बिलकुल ही अलग थीं। एक तो हम पचीस सौ वर्ष पुराने भारतीय भिक्षुओंके वेषमें यूरोपकी यात्रा करने जा रहे थे, जिसमें कुर्ता-धोती भी नहीं पहने जा सकते, कोट, पतलून, हैटकी तो बात ही अलग! दूसरे हमारे साथी भिक्षु आनन्द 'घासाहारी' हैं; मांस-मछलीकी तो बात ही क्या, अण्डेका (जो कि दूधका छोटा भाई है और जिसपर गीताके "आहाराः सात्त्विकाः प्रियाः" वाले सातो लक्षण घट सकते हैं *) भी नाम नहीं सुनना चाहते! अस्तु! हमने पुस्तक-पत्रके साथ कुछ जाड़के लिये गर्म चीवर (भिक्षुका लम्बा-चौड़ा चादर-सा कपड़ा) तैयार कराया। आनन्द समुद्र-यात्रामें बड़े बहादुर हैं, यह मैंने तभी जाना था, जब कि, भारत और लंका की दो घंटेकी समुद्र-यात्रामें भी वह कै किये बिना नहीं रहे! यहाँ तो भारतीय महासागर था, तिसपर मानसूनका समय; इसलिये मैंने कई मित्रोंको नीबू और नमककी फरमाइश दे रखी थी; यद्यपि आनन्दजी इसे प्रतिष्ठामें बट्टा लगाना समझते थे! मेरी चली होती, तो कुछ केला, सेब आदि भी रख लिये होते।

* १ आयुवर्धक; २ सत्त्ववर्धक; ३ बलवर्धक; ४ आरोग्यवर्धक; ५ सुखवर्धक; ६ प्रीतिवर्धक; ७ रसमय; ८ स्थायी पौष्टिक शक्ति वाला; ९ रुचिकर।

—गीता अ. १७, श्लोक ८।

राम-राम करके पाँच जुलाईका दिन भी आ पहुँचा। पाँच बजे हम लोग मोटर द्वारा विद्यालंकार-विहारसे* कोलम्बो बन्दर-गाह लाये गये। महाबोधि-सभाके ट्रस्टी, हमारे उपाध्याय परम मान्य श्री धर्मानन्द नायक महास्थविर, बीससे ऊपर भिक्षु तथा बहुतसे गृहस्थ, बिदा करनेके लिये आये।

बम्बई और कराचीकी भाँति कोलम्बोमें जहाज किनारे तक नहीं जा सकता; इसलिये हमें छोटी मोटर-नौकासे जहाजपर जाना था। हम दोनोंने अभिवादन-पूर्वक अपने उपाध्यायसे बिदा ली। कुछ भिक्षु ट्रस्टी और कितने ही गृहस्थ हमारे साथ जहाजपर आये। यों तो एकाध बार पहले भी जहाजके भीतर जाकर देखा था; किन्तु अब तो १८, १९ दिन उसीमें निवास करना था। बड़ा तअज्जुब-सा मालूम हुआ। विशेषकर तब जब कि दा—र्तञ-नाके सैकड़ों यूरोपीय यात्रियोंने हमारी पीले कपड़ों-वाली सिर-घुटी भिक्षु-मण्डलीको घूरकर देखना शुरू किया! जब हम सीढ़ीपरसे उतरकर अपने केबिनकी ओर जाने-आने लगे, तब आँगनमें बैठे फ्रांसीसी नौसैनिकोंने ताली बजाकर और ठहाका मारकर स्वागत किया! हम तीसरी श्रेणीके यात्री थे। जापानी जहाजोंमें तीसरे दर्जेमें ए, बी, दो श्रेणियाँ होती हैं; किन्तु फ्रेंच जहाजोंमें एक ही। साधारण जहाजमें कोलम्बोसे मार्सेलका किराया २२ या २३ पौंड है, किन्तु दा—र्तञ-ना प्रथम श्रेणीका, १५ हजार टनसे ऊपरका, जहाज है; इसलिये किराया २७ पौंड या ३६०) रुपये देना पड़ा। हम लोग धर्मप्रचारक थे; इसलिये कम्पनीने २०) रुपये सैकड़ा रियायत की। इस प्रकार ७२) रुपयेकी बचत हुई।

---

*विद्यालंकार परिवेण—सीलोनका सुप्रसिद्ध बौद्धमठ और गैर-सरकारी विद्यापीठ। हमारे उपाध्याय महानायक त्रिपिटकवागीश्वराचार्य लुणुपोकने श्री धर्मानन्द महास्थविर ही इसके कुलपति हैं।

हम लोगोंका केबिन पहले डेकपर था। बीचमें होनेसे रोशनी हवाके आनेका कोई रास्ता न था। दीवारसे लगी नीचे-ऊपर दो बर्थे (सोनेकी चारपाई-सी) थीं। ऊपरकी बर्थके पैरकी तरफ़ एक बिजलीका पंखा था; दरवाजेके पास एक बिजली बत्ती। नीचे दीवारसे लगकर मीठे पानीकी कल तथा अचल चीनीका पात्र था, जिसकी बग़लमें भित्तिबद्ध मुंदरियोंमें दो शीशेके ग्लास तथा एक शीशे की सुराही थी। पंखा देखकर जानमें जान आयी; नहीं तो इस अग्निकुण्डमें खौलना आसान काम न था। पीछे हमें मालूम हुआ कि, हम लोगोंकी बर्थे बी और सी नम्बरकी हैं। ए. नम्बरवाली बर्थे सबसे अच्छी होती हैं; क्योंकि उनमें समुद्रकी तरफ़ बड़े-बड़े गोल छिद्र होते हैं, जिनसे हवा और रोशनी, दोनों आती रहती हैं। टिकट लेते वक़्त कोशिश की गयी होती, तो मिल जाना भी बहुत सम्भव था।

जहाज़ ग्यारह बजे छूटनेवाला था; इसलिये एक घंटे बाद लोग चले गये। नौ-दस बजे और कुछ लोग आये। सबसे पीछे हमारे गुजराती मित्र माणिकलाल पाटील, उनके भाई तथा कुछ और गुजराती सज्जन आये। माणिकलालजी जौहरी हैं। उनकी एक दूकान पेरिस (Paris) में भी है। उनके भाई तो निरामिष भोजनोंकी एक तालिका ही बनाकर आनन्दजीके लिये लाये थे। हमने पाखाना, पेशाबखाना और स्नानागार देख लिया। स्टीवर्ड और नौकरको दस और पाँच शिलिंग इनाम दिया गया। वे लोग चले गये और हम लेटकर गप्पें मारने लगे। ग्यारह बजे सीटी बजी। जहाज़ चलने लगा। हम सो गये।

सबेरे नींद टूटी, तो देखा, जहाज़ ऊँचे-नीचे हो रहा है, जिसके साथ हमारा दिल भी, सावनके ऊँचे झूलेपर बैठे नौसिखियेके मनकी तरह; उत्तुङ्ग शिखरसे अतल खातकी ओर गिर

रहा था। जब जहाज़ ऊँची लहरोंपर उठता है, तब सिरमें थोड़ा-सा चक्कर आता है; किन्तु जिस समय लहर नीचेसे निकल जाती है, उस समय जहाज़के पतनके साथ दिल एक दम गिर ही नहीं पड़ता; बल्कि मालूम होता है, एक ठंढी हवाका झोंका कलेजेके एक-एक छिद्रमें, जल्दीसे, घुस गया। थोड़ी देर तो बिस्तरेपर पड़े रहे। उतरकर डाँवाडोल जहाज़ में लड़खड़ाते बाहर आकर देखा, तो मालूम हुआ, सबेरा हो गया। पाखाने गये। यहाँ पानीकी जगह काग़ज़का व्यवहार था। यह भी सीखना ही था! दाँत की लेईसे दांतुन कर जब कुल्ला करने लगे, तब एक बार कै-सी मालूम हुई। लेकिन अठारह घण्टे बाद पेटमें रखा ही क्या था? आनन्दजीकी हालत तो कुछ न पूछिये। सिरमें चक्कर आ रहा था; जी मिचला रहा था; किसी तरह मनपर ज़ोर देकर उन्होंने हाथ-मुँह धोये। खूब कै आने लगी। लेकिन पेटमें कुछ न था। शामको ही हमने स्टीवर्डसे कह दिया था कि, हमारा खाना केबिनमें आना चाहिये। तदनुसार हमारे मुँह धोनेसे पूर्व ही रोटियोंके आठ-दस टुकड़े, दो प्याला काफ़ी और मक्खन पहुँच गये। दोनों ने बैठकर किसी तरह उन्हें ख़तम किया। हम तो जाकर अपने बिस्तरेपर पड़ रहे और आनन्दजीको उठते-उठते कै आ गयी; सब खाया निकल गया। मानसूनका दिन था। समुद्र बड़ा ही चञ्चल था! हमारे सहयात्रियोंमें एक अंग्रेज़ लेफ़्टिनेंट थे। उनका तो फ़तवा था कि, ३५ वर्षमें ऐसा चञ्चल समुद्र कभी नहीं पाया। यह तो साफ़ था कि, लड़कों और नाविकोंको छोड़कर यात्रियोंमें सभी बुरी अवस्थामें थे। मैंने बिस्तरेपर जाकर देखा कि, यदि जहाज़के ऊपर उठनेके साथ साँससे पेटको भरा जाय और उतरनेके साथ धीरे-धीरे खाली किया जाय, तो कुछ आराम मिलता है। मैंने अपना यह आविष्कार आनन्दजीको भी बताया। साथ ही साथमें

आये नीबुओं और अदरखके टुकड़ोंका व्यवहार शुरू कर दिया। आनन्दजीको तो नीबू चाटना भी जबर मालूम पड़ता था!

समुद्रकी यही हालत एक सप्ताह तक रही। मुझे न कै हुई, न खाने में कोई अरुचि। लोग कहते थे, आपको समुद्रयात्राका बहुत अभ्यास है। मैंने कहा "नहीं, यह पहली ही यात्रा है।" लोग आश्चर्य करते थे! दरअसल मेरे लिये तिब्बतकी सर्दी, हिमालयकी चढ़ाई और इस उत्तरङ्गित समुद्रकी यात्रा एक-सी ही मालूम हुई। हाँ, पहले दिन अपरिचित होनेके कारण कुछ अजीब-सा मालूम हुआ था। दोपहरका खाना फिर हमारे कैबिनमें ही आया। आनन्दजीको भूख ही न थी, कहनेपर आमके दो-चार टुकड़े खाये। मैंने तो गोश्त, अण्डा, मछली, रोटी, मक्खन, जो कुछ आया था, बेखटके पेट भर खाया। पश्चात् थोड़ी देर बिस्तरेपर पड़ रहा। इसके बाद चीनी प्रोफ़ेसर ल्यूके पास गया। बेचारे सबेरेसे ही बिस्तरेपर पड़े थे। यह सज्जन लड़कपनमें ही विद्याभ्यासके लिये अमेरिका भेज दिये गये थे। इधर कई वर्षों-तक मुकदन (मंचूरिया)के चीनी विश्वविद्यालयमें इतिहास और संस्कृतके अध्यापक थे। एक साल पूर्व, जापानने मंचूरिया-पर पूर्ण-रूपेण क़ब्ज़ा जमा लिया, तब यह विश्वविद्यालय भी बन्द हो गया। प्रोफ़ेसर ल्यु इधर अन्तर्राष्ट्रीय संघ द्वारा नियुक्त मंचूरिया कमीशनके चीनी सदस्यके विशेषज्ञ परामर्शदाता रहे। अब यूरोप और अमेरिकाकी यात्रापर निकले हैं। शामको मैंने बड़े आग्रहपूर्वक ताजी नारंगीका रस पीनेको दिया; साथ ही चूसनेके लिये अदरख और नीबू भी।

तीसरे दिनसे मैंने अपने जहाज़ दा—र्तब्‌-नाब्‌की खबर लेनी शुरू की। यह फ्रांसीसी जहाज़ी कम्पनी मेसाजिरी-मारी-तीमूके ए श्रेणीके बड़े जहाज़ोंमें है। इसकी लम्बाई ५४१ फ़ीट, चौड़ाई ६५ फ़ीट, वज़न १५,१०५ टन और इंजिन दस हज़ार

घोड़ोंकी ताक़तका है। यात्रियोंके रहनेके बी, सी, डी, ई, चार तल हैं, जिनमें बी तल सिर्फ़ तीसरे दर्जेके यात्रियोंके लिये है और डी, ई सिर्फ़ पहले दर्जेके लिये। सी तलपर पहले और दूसरे, दोनों दर्जेके यात्री रहते हैं। प्रथम दर्जेके केबिन बड़े हैं। सबमें बाहरकी ओर छिद्र हैं। इसलिये रोशनी और हवा आती है। दूसरे दर्जेवालोंकी दशा तीसरे दर्जेवालोंसे बहुत अच्छी नहीं है, जहाँतक हवा और दिनकी रोशनीका सम्बन्ध है। हाँ, तीसरे दर्जेवालोंके लिये एक ही हाल है, जिसमें खाना, सिगरेट पीना, बातचीत करना, सब होता है। दूसरे दर्जेवालोंको इनके लिये तीन अलग-अलग कमरे हैं।

खानेके चार समय हैं। ६ बजे चाय, रोटी और मक्खन, ११ बजे मध्याह्न-भोजन, जिसमें दो तीन तरहका मांस, मछली, एक फल, एकाध तरकारी और रोटी है। काफ़ी-चाय और पीने-वालोंको आधी बोतल लाल शराब भी मिलती है। चार बजे फिर सबेरे जैसा। ६ बजे शामके भोजनमें दोपहरसे कुछ विशेषता रहती है। हम लोग दोपहरके बाद खाना तो खा नहीं सकते थे: हाँ, कभी-कभी बिना दूधकी चाय पीने ज़रूर चले जाते थे। जहाज़में पानी ख़ूब ठंढा मिलता था, यह सबसे आनन्दकी बात थी।

१२ जुलाईको हमने अफ्रीकाका किनारा देखा। छोटे-छोटे नंगे पहाड़, नीचे किनारे पर मछुओंकी छोटी नावें। मालूम हुआ, यह सुमाली-तट हैं, जो इटली के अधीन है। अब जहाज़ उतना हिलता-डोलता न था। लोग अब अपनी हालतमें आ रहे थे। आनन्दजी तो इन दिनों बराबर ऊपरी छतपर, जावाके चौथे दर्जेके एक मुसलमान यात्रीके पास, जाकर पड़े रहते थे। ऊपर हवा तेज़ चलती थी; इसलिये केबिनसे वह अच्छा था। जावी बेचारा अपनी भाषा और अरबी छोड़कर दूसरी भाषा

नहीं जानता था। एक दिन मैं भी गया। उसने पूछा—"अन्ता अरबी।" मैंने कहा—"अना हिन्दी।" मुझे भी तो अरबी छोड़े १४ वर्ष हो गये थे; इसलिये किसी तरह काम भर चला लेता था। बातचीतसे मालूम हुआ कि, ये हमारे दोस्त, अहमद, जावाके बतावू (Batevia) शहरके रहनेवाले हैं। इनकी मातृभाषा मलायू (मैले) है। अदनसे आगे अरबके किसी छोटे शहरमें इनकी एक छोटी-सी दूकान भी है।

अब हमारा जहाज़ अफ्रीका-तटके पाससे चल रहा था। गर्मी कुछ बढ़ गयी थी; किन्तु वह अवस्था न थी, जो आगे चलकर, लाल सागर में, होनेवाली थी। हम लोग ऊपरकी खुली छतपर जा बैठते थे, कभी प्रोफ़ेसर ल्युके साथ बौद्ध-धर्म, एशियाकी संस्कृति आदिपर बात-चीत होती थी, कभी प्रोफ़ेसर इंग्लिशसे बुद्ध-धर्म और दर्शनपर। यह महाशय अमेरिकन हैं। छः वर्ष फिलीपीनमें अध्यापनका कार्य करके अब स्वदेश लौट रहे हैं। अन्य अमेरिकनोंकी भाँति खुले दिलके हैं। गांधीजीके बड़े भक्त हैं। बुद्धके अनात्मवाद, अनीश्वरवाद, पुनर्जन्मवाद आदिको सुनकर इन्हें आश्चर्य होता था। दर-असल इन्होंने बुद्ध-धर्मके सम्बन्धमें अभीतक इतना ही सुना था कि, इसके अनुयायी मिट्टी-पत्थरकी मूर्तियोंको ईश्वर मानकर उनसे मुराद माँगा करते हैं।

ग़ल्तीसे हमने सफ़री कुर्सी नहीं ली थी। सुन तो चुके थे कि, जहाजी यात्रामें इसकी बड़ी आवश्यकता होती है। यहाँ आकर उसकी बड़ी ज़रूरत हुई। यदि कुर्सी रहती, तो रातको ऊपर खुली छतपर सोनेका स्वर्गीय आनन्द मिलता।

१४ जुलाईको सबेरे पाँच बजेसे पहले ही हम जिबूती पहुँच गये। यह अदनके सामने अफ्रीकाके तटपर (फ़्रांसीसी) बस्ती

है। यहाँसे अबीसीनियाको फ्रेंच रेलवे लाइन गयी है। मेडागास्कर, पूर्वी अफ्रीका जानेवाले जहाज़ यहीं होकर जाते हैं। फ्रांससे चीन, जापान जानेवाले सभी जहाज़ यहाँ ठहरकर जाते हैं। जिबूती बस्ती वनस्पति-शून्य अफ्रीकाके तटपर बसी हुई है; किन्तु जहाज़ और रेलका केन्द्र होनेसे दिन-पर-दिन तरक्क़ी कर रही है। यहाँ छ-सात सौ यूरोपियन (अधिकांश फ्रेंच) रहते हैं। बाक़ी तेरह हज़ारकी बस्तीमें कुछ भारती (गुजराती और पारसी) सौदागर भी हैं। फूल बेचनेके लिये जहाज़में आये सुमालियोंसे मालूम हुआ कि, यहाँ हिन्दी भी कुछ समझी जाती है। भारतीय रुपया खूब चलता है। दूसरा सिक्का (फ्रांसीसी) फ्रांक है। एक वर्ष पूर्व एक रुपयेका दस फ्रांक मिलता था अर्थात् एक पौंडका १३३ फ्रांक, जिस दिन, (५ जुलाई कोलम्बो छोड़ा, उस दिन मालूम हुआ कि काग़ज़ी पौण्ड (स्टर्लिङ) ६६ फ्रांकोंका है। १४ जुलाईको उसकी दर ६०·५५ फ्रांक ही रह गयी। काग़ज़ी पौण्डके साथ हमारा रुपया भी रसातलको जा रहा है। क़रीब एक-तिहाई मूल्य तो अभी उसका निकल गया।

जाकर जिबूती देखनेका विचार था; किन्तु जहाज़ यहाँ तीन ही घण्टे ठहरनेवाला था। जब तक साथी खोजा, तबतक नाव ही नहीं रही! जिबूतीमें आपको हब्शी, अरब, हिन्दुस्तानी, फ्रांसीसी, सभी तरहके आदमी मिलेंगे। जहाजपरसे ही यूरोपियन मुहल्लेके सुन्दर प्रासाद दिखाई देते हैं। कहीं-कहीं बड़े परिश्रमसे छोटे-छोटे बागीचे भी तैयार किये गये हैं। बिजलीकी रोशनी और पानीके नलके सिवा यहाँ बर्फ़के कारखाने भी हैं, जिनसे इस दहकती भूमिकी तकलीफ़ बहुत कुछ कम हो गयी है। यहाँसे अदन और जेला जानेके लिये कावसजी जहाँगीर कम्पनीके भारतीय स्टीमर हैं।

आठ बजे हमारा जहाज़ वहाँसे रवाना होकर लालसागरमें घुसा। शामको देखा, तो समुद्र इतना शान्त था, मानों जहाज़ किसी झीलमें जा रहा है। सबेरे जब नहानेके नलको खोला, तब लाल रंगका पानी गिरने लगा। हमने लालबुझक्कड़की दौड़ लगायी और कहा, "हाँ, इसीलिये तो इसे लालसागर कहा जाता है!" पीछे मालूम हुआ कि, यह लोहेकी टंकीका तल-छँट पानी था। लालसागरकी गर्मीका कुछ न पूछिये, सभीके मुँहसे "त्रेशो" (बहुत गर्मी) सुनाई पड़ता है!

इस प्रकारकी विचित्रताओंसे भरी हमारी हिंडोलेकी दुनिया (जहाज़), अपने विलक्षण पथसे, कोलम्बोसे यूरोप (मार्सेल) पहुँच गयी।

२

यूरोपकी झाँकी

हाँ, तो लालसागर वगैरहकी कुछ और बातें सुन लीजिये।

१७ जुलाईको हमारा जहाज़ लालसागरमें जा रहा था। समुद्र इतना शान्त था कि, देखनेमें सरोवर-सा जान पड़ता था। बाईं तरफ छोटे-छोटे पर्वतोंकी श्रेणियाँ थीं। कहीं वृक्ष या बस्तीका नाम न था। कुछ स्टीमर आते-जाते दिखाई पड़ते थे। आज रविवार था। प्रति रविवारको जहाज़में यात्रियोंको डूबनेसे बचनेकी शिक्षा दी जाती है। अपनी-अपनी कोठरीमें हर एक यात्रीके लिये प्राणरक्षक पेटिका टँगी रहती है। क़वायदके दिन, घंटा बजते ही, पेटी ले (उसके साथ लगे) नोटिसके बताये मार्ग द्वारा नर-नारी निश्चित स्थानपर पहुँच जाते हैं। सब लोग अपनी अपनी पेटी लगा लेते हैं। यदि पेटी लगानेमें कोई ग़ल्ती रहती है, तो जहाज़ी आफ़िसर बता देते हैं। इसके अतिरिक्त हर एक यात्रीको यह जान लेना होता है कि उसका स्थान कहाँ निश्चित है और कहाँ उसकी नाव मिलेगी, जिसमें अचानक सङ्कट उपस्थित हो जानेपर अव्यवस्था न हो। हाज़िरी हो जानेपर फिर छुट्टी हो जाती है।

लालसागरकी गर्मी मशहूर है। गर्मी बहुत थी। शामको श्री ल्यूके साथ मैं ऊपर, डेकपर, बैठा था। अँधेरा हो जानेपर

खा-पीकर अन्य स्त्री-पुरुष भी आ गये। एक फौजी आफ़िसरने ग्रामोफोनपर रेकार्ड चढ़ा दिया। कुछ गीतोंके हो जानेके बाद रेकार्डमें नाचका बैंड बजने लगा और स्त्री पुरुषोंकी दो-तीन जोड़ियाँ नाचके मैदानमें उतर पड़ीं। घंटे भर नाच होता रहा।

१८ तारीखको रातके तीन बजे ही हमारा जहाज़ स्वेज़ पहुँच गया। उतरकर नगर देखनेका विचार था; किन्तु आठ ही बजे जहाज़ चल देनेवाला था; इसलिये किनारेपर जहाज़ न जा सका। यहाँसे काहिराकी सैरका प्रबन्ध है। जहाज़से कुछ आदमी गये भी। वह लोग रातको दस बजे पोर्ट सईदमें लौटकर आ भी गये। स्वेज़से काहिरा रेल या मोटरपे जाना होता है। शहर, जादूघर और पिरामिड दिखा जाते हैं; फिर रेल या मोटरसे पोर्ट सईद। खर्च छः-सात पौंड पड़ता है। जल्दीके कारण हमने जाना पसन्द नहीं किया।

स्वेज़ अफ्रीकाकी ऊजड़ भूमिमें बसा है। नहरके कारण बस्ती बहुत बढ़ गयी है। यूरोपियन मुहल्ला बन्दरके पास है। मकान साफ़-सुथरे हैं। तो भी वृक्ष-वनस्पतिकी दरिद्रता है। यहाँ कितने ही फल बेचनेवाले जहाज़पर आ गये थे। एक सिन्धी सज्जन भी मिश्रके क़सीदेके कपड़े बेच रहे थे। मालूम हुआ, स्वेज़में तीन, इस्माइलियामें दो, पोर्ट सईदमें चार और काहिरामें सिन्धी हिन्दुओंकी सात दूकानें हैं। सिकन्दरिया तथा कुछ और जगहोंमें भी कुछ सिन्धी व्यापारी रहते हैं। आठ बजे हमारा जहाज़ चल पड़ा। थोड़ी ही देरमें हम लोग नहरमें घुस पड़े। नहर इतनी चौड़ी है कि, दो जहाज़ आ-जा सकें, तो भी बड़े जहाज़ोंके लिये दिक़्क़त होती है; इसलिये सामनेसे दूसरे जहाज़के आनेपर एक जहाज़को स्टेशनपर एक ओर खड़ा कर दिया जाता है। नहरकी बाईं ओरसे मोटर और रेलकी सड़क जाती

है। किनारेपर कुछ वृक्ष भी लगाये गये हैं; लेकिन तो भी उससे अफ्रीकाकी भूमि छिप नहीं सकी है। दाहिनी ओर बालुका-मिश्रित नंगी भूमि है। लड़ाई के वक्त इस नहरपर भी धावा हुआ था—यह कितनी ही जगह पड़े खाइयोंके निशान बतला रहे थे।

आठ बजे, सूर्यास्त होनेके बाद, हम पोर्ट सईद पहुँचे। नगर देखना हमने पहलेसे ही निश्चय कर लिया था। २६ फ्रांक (प्राय: अढ़ाई रुपये) दे, किनारे जानेके लिये, दो टिकट लिये और छोटी मोटर-नौका-से जगह-जगह जगमगाते बिजलीके दीपकोंको देखते किनारे पहुँच गये। नावमें एक मिश्री आफ़िसरने हम लोगोंका विचित्र वेष देखकर जन्मभूमि आदि पूछी। जब अरबी भाषामें मैंने "नहनू राहिबून" (हम साधु हैं) कहा, तो उनकी मुद्रा और गम्भीर हो गयी। उन्होंने महात्मा *'कंदी'के इधरसे जानेकी बात भी कही।

किनारेपर आते ही बनारसके पंडोंकी भाँति पथ-प्रदर्शक ने आ घेरा। हमने कितना ही इनकार किया, तो भी तब तक पीछा न छूटा, जब तक कि, प्रधान सड़कपर जाते हुए सेठ बालूरामजी, हमें देख, आग्रहपूर्वक दूकानके भीतर नहीं ले गये। सिन्धी लोग ऐसे भी बड़े श्रद्धालु होते हैं, फिर विदेशमें तो देशका कुत्ता भी प्रिय होता है। इन्कार करते-करते भी एक-एक प्याला काफ़ी और एक-एक गिलास नील गंगाका जल सामने रख दिया गया। नील गंगाके जलको पाकर तो दरअसल बड़ी प्रसन्नता हुई। सेठ बालूरामजीसे कुछ देर बातचीत होती रही। उनसे मालूम हुआ कि, पोर्ट सईदमें एशिया, यूरोप, अफ्रीका—तीनों ही महाद्वीपोंके आदमी निवास करते हैं। दूकानदार

*गान्धी

अरबी, अंग्रेजी, फ्रेंच, ग्रीक, इटालियन भाषाओं को फरफर बोलते हैं। राज-कर्मचारियोंमें फ्रेंचकी चाल ज्यादा है। यहाँ ५० से अधिक पंजाबी मुसलमान ज्योतिषीका काम करते हैं। यूरोपियन तो ज्योतिषियोंके पीछे और भी मरते हैं। हम लोग यहाँसे कुछ दूर टहलने निकले। सड़क साफ़ थी। तिमहले-चौमहले मकान बिजलीकी रोशनीमें जगमगा रहे थे। कहीं-कहीं सोडा-वाटरकी दूकानोंके सामने लोग कुर्सियोंपर बैठे पान कर रहे थे। उस रातको भी हमारा विचित्र वेष लोगोंको आकर्षित किये बिना न रहा। थोड़ी देर घूम-घाम कर हम फिर सेठजीकी दूकानपर लौट आये। रास्तेके लिये खबूजा, तबूजा और कुछ फल मँगवाये। कुछ पौंडोंका फ्रांसीसी सिक्का भुनाया। मालूम हुआ, आज कागजी पौंड (स्टर्लिङ) का मूल्य साढ़े नब्बे फ्रांक है। कोलम्बोसे यहाँ तक में सिर्फ ढाई फ्रांककी कमी हुई है। साल डेढ़ साल पूर्व, जब पौंड सोनेका था, तब उसका दाम १३० फ्रांकके क़रीब था। पौंडके पतनके साथ हमारा रुपया भी गिर रहा है। जहाँ डेढ़ वर्ष पूर्व रुपया प्रायः १० फ्रांकका था, वहाँ अब सात फ्रांकके ही बराबर रह गया है। ग्यारह बजे हम लोग जहाजपर लौट आये।

रातको बारह बजे हमारा जहाज चल पड़ा। अब हम भूमध्य सागरमें थे। पोर्ट सईदमें कुछ नये यात्री भी आ चढ़े थे। उनमें फ़िलस्तीनके एक यहूदी सज्जन तथा साइप्रसके एक ग्रीक तरुण भी थे। मालूम हुआ, साइप्रसमें ग्रीक और तुर्क लोगोंकी आबादी है। द्वीप अंग्रेजोंके हाथमें है। दोनों जातियाँ मेल-जोलसे रहती हैं। फ़िलस्तीन में अरब और यहूदी अंग्रेजी छत्रच्छायामें रहते हैं; किन्तु यहाँ दोनों जातियोंका बहुत वैमनस्य है। यहूदी लोग चाहते हैं कि, फ़िलस्तीन यहूदी जातिका मुल्क बन जाय। उन्होंने इसके लिये अरबों रुपये खर्च किये हैं और

यूरोप तथा अमेरिकासे हजारों यहूदी परवार आकर बस भी गये हैं। तो भी, यहूदियोंकी संख्या सिर्फ दो ही लाख हो पायी है, जब कि, अरबों (ईसाई-मुसलमान, दोनों)की संख्या सात लाख है।

२० जुलाईको ग्यारह बजे हमारी बाईं ओर क्रेत (Crete) द्वीप आ गया। सामने ऊँची लम्बी पहाड़ी दीवार-सी खड़ी थी। हरियालीका नाम नहीं। मिश्रकी भाँति क्रेतकी सभ्यता भी बहुत पुरानी है। यहाँ खोदाईमें छः-सात हजार वर्षकी पुरानी चीजें मिली हैं। जिस प्रकार आर्योंके प्रथमागमनके समय सिन्धु-उपत्यकाकी सभ्यता थी, वैसे ही यवन (ग्रीक) लोगोंके पूर्व क्रेतकी सभ्यता थी।

२१ जुलाईको, सायंकाल पाँच बजे, दाहिनी तरफ क्षितिजपर बादलकी स्याही-सी दिखाई पड़ी। धीरे-धीरे वह छोटे-छोटे पहाड़ोंकी श्रेणीमें बदल गयी। थोड़ी ही देरमें उनमें पैरसे चोटी-तक जहाँ-तहाँ, लाल खपड़ोंके घरोंवाले गाँव, और हरे-भरे उद्यान, दिखाई पड़ने लगे। लंकाके बाद आज ही पेटभर देखनेको हरियाली मिली। यह कवियोंका देश इटली* है। एक घंटा और चलनेपर मसीना नगर दिखाई पड़ा। नगरके राज-पथ और वीथियाँ सरल रेखामें चली गयी हैं। बीच-बीचमें गिरिजाघरोंके शिखर निकले हुए थे। ६ बजेके समय बाईं ओर सिसली द्वीपमें एटनाकी ज्वालामुखी चोटी बादलोंसे झाँकती दिखाई पड़ी। कुछ ही वर्ष पूर्व एटनाने सोनेसे करवट बदली थी। उस समय एटनाके क्रोधने, थोड़े समयके लिये, महाप्रलयका नजारा सामने ला रखा था। सारे प्रदेशपर धुआँ छा गया, काली राख धरती और आकाशमें दूर-दूर तक फैल गयी। भूकम्पसे कितने ही घर

*शुद्ध उच्चारण 'इताली' है

बरबाद हो गये। मसीना नगरकी तो बुरी दशा हुई। सिसली द्वीप इटलीके ही अधीन है। पर्वत, गाँव, उद्यान, एक-से ही हैं। एक जगह देश और द्वीप बहुत नजदीक आ जाते हैं। यहींसे जहाजको आगे निकलना होता है।

२२को सायं चार बजे सार्दीनिया द्वीप (इटलीमें) दिखाई पड़ा। मालूम हुआ, अब कार्सीका आनेवाला है। मैं बड़ी चाव-भरी दृष्टिसे कार्सीकाके वृक्षरहित खंडहरोंको देखने लगा। मेरे साथी यवन तरुणने नेपोलियनकी जन्म-भूमिको मुझे इतनी गम्भीरतासे अवलोकन करते देखकर कहा—'नेपोलियनको मैं नहीं पसन्द करता, वह लड़ाईवाला आदमी था।' ध्यान दूसरी ओर लगा रहनेसे मैं यह नहीं पूछ सका—'क्या आप अपने अलिकसुन्दरको (सिकन्दर) भी नहीं पसन्द करते; वह भी तो लड़ाईवाला आदमी था?' आज उन यहूदी सज्जनसे विशेष बातें हुईं। उनका जन्म रूसका है। अब कई वर्षोंसे फ़िलस्तीनमें बस गये हैं; और, फ़िलस्तीन-वासी रूसी यहूदियोंकी सभाके कोई कार्यकर्त्ता हैं। जर्मन, रूसी, इब्रानी और अरबी भाषाएँ जानते हैं। अंग्रेज़ी बहुत थोड़ी। यूरोपके लोग देखते ही यहूदीको पहचान लेते हैं। यह पहचान है अपेक्षाकृत अधिक ऊँची, लम्बी तथा तोतेके ठार-सी मुड़ी नाक। यूरोपमें यहूदी दो देशोंसे होकर गये हैं—एक रूससे, दूसरे स्पेनसे। पहलेवालोंके बाल अधिक भूरे होते हैं और दूसरोंके काले। यह लोग सूअरके मांससे वैसे ही परहेज़ करते हैं, जैसे मुसलमान। यहूदी माँका बच्चा ही यहूदी हो सकता है; इस नियमके कारण भी इस जातिके लोग कितनी ही आनुवंशिक विशेषताओंको अपने शरीरमें क़ायम रखे हुए हैं।

कल दोपहरको मार्सेल् पहुँचना है; इसलिये स्टीवर्डने सबका पासपोर्ट माँग लिया। हमने अपने चार बक्स लन्दन भेजना ते

कर लिया था; इसलिये आज वह भी हमारे केबिनसे चले गये। मार्सेल्में ऐसा करनेसे, फ्रांसके भीतर, चुंगीकी दिक़्क़तसे बच जाना होता है।

२३के ग्यारह बजे मार्सेल् नगर दिखाई देने लगा। नगर समुद्रतटसे पहाड़के शिखर तक बसा हुआ है। बीच-बीचमें वृक्षों-की हरियाली साबित कर रही थी कि, हम अफ्रीकाके तटपर नहीं हैं। थोड़ी देरमें हमारा जहाज़ किनारे जा पहुँचा। हज़ारों आदमी, अपने मित्रोंसे मिलनेके लिये, आकर खड़े थे। किनारे लगते ही थामस् कुक्का आदमी आ पहुँचा। हमने अपने सामान उसके ज़िम्मे किये और अपने आफ़िसरसे पासपोर्ट लाने चले गये। आफ़िसरने देखकर और हस्ताक्षर करके पासपोर्ट लौटा दिये। हमारे सहयात्री अमेरिकनकी जानमें जान आयी। किसीने उन्हें कह दिया था कि, बिना काफ़ी रुपये दिखाये फ्रांसमें उतरने नहीं दिया जाता। बेचारेके पास, आगेके खर्चके लिये, रुपया फ्रांसमें ही आनेवाला था।

टैक्सीकर हम लोग थामस् कुक्के आफ़िसमें पहुँचे। हमें साढ़े ग्यारह सौ फ्रांक बैंकसे लेने थे। आज शनिवार था और अब एक बज चुका था। आज पैसा न मिलता, तो सोमवार तक यहीं ठहरना पड़ता। थामस् कुक्के बैंक विभागसे पूछा। उन्होंने २६ फ्रांक कमीशन लेकर हमें पैसा दे दिया। ल्यु महाशयने पेरिसका टिकट ले लिया। हम अगले दिन जानेको थे। थामस् कुक्की शहर दिखानेवाली लारी तैयार थी। बीस-बीस फ्रांक दे हम भी नगर देखने जा बैठे। हमारा पीला वस्त्र लोगोंके लिये तमाशा हो रहा था।

पुरातन भव्य कथद्रल (गिरजा), क़िले और नगरोद्यानको देखते हम उस पहाड़के नीचे गये, जिसके शिखरपर "नोत्र-

दाम्''का प्रसिद्ध गिरजाघर है। हम बिजलीके खटोलेमें जा खड़े हुए। वह ऊपर उठने लगा। धीरे-धीरे हमारा दृष्टि-क्षेत्र बढ़ने लगा और हम नगरके अधिक भागको देखने लगे। ऊपर पहुँचते-पहुँचते पहाड़ी ज़मीनपर ऊँचे-नीचे बसा सारा शहर दिखाई देने लगा। छः-छः, सात-सात तलोंके मकान अब छोटे-छोटे घरौंदे मालूम होते थे। हमारे पथ-प्रदर्शक एक ऐंग्लो-इंडियन सज्जन थे। लड़ाईके दिनोंमें इधर आये। फिर शादी कर यहीं बस गये। हिन्दी भी बोल लेते थे। उनके साथ बातें करते हम "नोत्र-दाम्"के गिरजे की ओर बढ़े। रास्तेमें दो-तीन भिखमंगे मिले। हाँ, वे बेचनेकी एकाध चीज़ लेकर बैठे थे। गिरजेके अँधेरे हालमें कितनी ही कुर्सियाँ पड़ी थीं। सामने, छोरपर, ईसाकी माता कुमारी मरियम्की (नोत्र-दाम्—हमारी महिला) मूर्ति थी। गिरजेके ऊपर भी शिशु ईसाको लिये मरियम्की पीतलकी मूर्ति है। मन्दिरके भीतर कहीं उन लंगड़ों-अपाहिजोंके सैकड़ों दंड टँगे हुए हैं, जो "हमारी देवी"की कृपासे चंगे हो गये थे। कहीं-कहीं उन जहाज़ोंकी तस्वीरें या नाम अंकित हैं, जिन्हें कृपामयी "हमारी देवी"ने बचाया था। कहीं कितने ही कृतज्ञ जनोंके नाम अंकित हैं, जिनमें स्वर्गीय महारानी अलेक्-जेंड्राका नाम भी है। "हमारी देवी"की इस जीती-जागती महिमाको देखकर कौन प्रभावित हुए बिना रहेगा? किन्तु हमारे एक भारतीय साथीने कहा—"सभी जगह ठगीका बाज़ार एक-सा ही गर्म है!"

मार्सेल्में आठ लाख आदमी बसते हैं और फ्रांसमें यह, पेरिसके बाद, दूसरे नम्बरका शहर है। समुद्रके किनारे होनेसे व्यापारका प्रधान केन्द्र है। "नोत्र-दाम्"से उतरकर हम घुड़दौड़, जादूघर, उद्यान आदि होते कुक्के कार्यालयमें पहुँचे। देखना खतम हो चुका था; इसलिये साथियोंके संग आज ही हम लोगों-

की भी चलनेकी सलाह हो गयी। ७५० फ्रांक दे लन्दनके (तीसरे दरजेके) दो टिकट लिये गये। थोड़ी ही देरमें हम लोग स्टेशनपर जा पहुँचे। हम दोनोंके विचित्र पीले कपड़ोंको देखनेके लिये भोड़ लग गयी! गाड़ी में देर थी। प्रोफ़ेसर ल्युने होटलमें (रेस्तोराँ) लेमोनेड पीनेके लिये चलनेको कहा। वहाँ बैठे सैकड़ों आदमी भी हमारी ओर घूर-घूरकर देखने लगे। ल्यु महाशय पेशाबखानेमें गये। लौटते वक्त उन्हें तीन फ्रांककी (प्रायः छः आने) पुर्जी थमा दी गयी। बड़ा कहकहा मचा, जब उन्होंने आकर कहा—"फना, यह तो पेशाबका भी तीन फ्रांक चार्ज करते हैं!"

आठ बजे हमारी पेरिसकी गाड़ी रवाना हुई। अपने चार अदद सामानके लिये ६० फ्रांक तो हमें कुक् कम्पनीको देने पड़े और २० फ्रांक आदमीको टिप् या बख़शीश। तीसरा दरजा अपने यहाँके ड्योढ़ेसे अच्छा था। सिर्फ़ पाखाना गन्दा और दूरके छोरपर था। हर एक बेंचपर ४ आदमियोंकी दो-दो जोड़ी करके बैठनेकी जगहें थीं। हमारे कम्पार्टमेंटमें तीन भारतीय, एक इंडो-चीनी और दो सपत्नीक फ्रांसीसी थे। आज रात बैठे-ही बैठे काटनी थी। नौ बजे तक, जब तक कि, अँधेरा नहीं हुआ, हम लोग फ्रांसके कितने ही गाँवोंको देखते रहे। लाल खपड़ैल-से ढँके छोटे-छोटे, दूर-दूर बसे, मकान, अपने छोटे-छोटे बग़ीचों, सुन्दर जुते और हरे-भरे खेतोंके साथ, बहुत सुन्दर मालूम पड़ते थे। गाड़ी बहुत कम जगह ठहरती थी। ठहरनेके स्टेशनोंपर भी खाने-पीनेकी चीजें न मिलती थीं। हमारे साथी फ्रेंच दम्पतिने तो बोतलमें पानी भरकर रख छोड़ा था!

रात जैसे-तैसे गुजर गयी। चार बजे ही उजाला हो चला। पाँच बजेसे पहले सूर्योदय हो गया। हमारी अगल-बग़लमें

ऊँची-नीची—किन्तु फ्रांसकी शस्यश्यामला कपिला मही शोभा दे रही थी। सभी जगह सुव्यवस्था थी। गाँवोंके मकान ही कतारसे न थे; बल्कि खेतोंमें जमा किये घासके ढेर भी उसी तरह एक कतारमें सुन्दर ढंगसे रखे हुए थे। हर एक गाँवमें छोटा-मोटा एक गिरजा ज़रूर था। खेती ज़्यादातर गेहूँ, आलू, चुकन्दरकी थी। यद्यपि भूमि सभी छोटे-छोटे टीलोंवाली पहाड़ियोंकी है, तो भी नंगा पाषाण मुश्किलसे कहीं दिखाई पड़ता है।

६ बजे हम पेरिसके (परी) गार द लियों स्टेशनपर पहुँचे। यही सोच रहे थे कि, स्टेशनसे श्रीअम्बालाल पाटीलके यहाँ कैसे पहुँचेंगे। इच्छा रहते भी मार्सेलसे तार न दे सके थे। तो भी अम्बालालजी प्लेटफ़ार्म पर पहुँचे हुये थे। उन्हें कोलम्बोंसे जहाज़का नाम मालूम हो गया था; फिर तो जहाज़के मार्सेल् पहुँचने आदिका पता लगाना मुश्किल न था। टैक्सीकर होटल फ्रांकलिन् पहुँचे। चौथे तल्लेपर हम लोगोंका कमरा था। प्रति कमरा १५ फ्रांक (प्राय: दो रुपये) प्रति दिनका भाड़ा था। कमरा साफ़-सुथरा था। उसी में गर्म-ठंडे पानीके नल, दो बिजलीकी बत्तियाँ, दो बड़े-बड़े आइने, मेज़, कुर्सी, आलमारी—सभी कुछ था। ओढ़ने-बिछानेका प्रबन्ध यहाँ होटल ही करता है; इस लिये यात्री लोग अपना बिस्तरा साथ नहीं ले जाते। होटलमें सिर्फ़ रहनेका प्रबन्ध होता है। खानेका प्रबन्ध अलगसे करना पड़ता है। हम रातको जगे हुए थे; इसलिए नाश्ताकर सो गये।

चार बजे श्रीअम्बालाल जीके साथ नगर देखने निकले। यद्यपि हम टैक्सीपर थे, तो भी हमारे पीले कपड़े लोगोंकी दृष्टिको आकर्षित किये बिना नहीं रहते थे। सौन्दर्यमयी परी नगरी ही हमारे लिये कौतूहलोत्पादक न थी; बल्कि हम भी उसके निवासियोंके लिये विचित्र वस्तु थे। फ्रांसवाले खुले दिलके

होते हैं, यह पता लग गया; जब कि, हमारी खड़ी टैक्सीके पास आकर एक सज्जनने हमारे बारेमें प्रश्न पूछे। परी नगर सेन नदीके दोनों किनारोंपर बसा हुआ है। दूसरे किनारेवाला भाग पुरातन है और उसे अक्सर लैटिन मुहल्ला कहा जाता है। विश्वविद्यालय (सोरबन् महाविद्यालय), प्रजातन्त्रभवन (शाँब्र-दुदेपुती) नेपोलियनकी समाधि, पुरातन राजप्रासाद आदि पुराने मुहल्लेमें हैं। उधर ही एइ-फेलका विशाल लोह मीनार है; यह दुनियाका सबसे ऊँचा मीनार ६८४ फ़ीट ऊँचा है। इञ्जिनियर एइ-फेलने जनवरी १८८७में इसे बनाना शुरू किया और मार्च १८८९ ई०में खतम किया। ६८९० टन लोहा एवं ढाई लाख पौंड इसकी बनवाईमें लगे। १८७, ३७७ और ९०२ फ़ीटकी उँचाइयोंपर क्रमशः तीन तल हैं। सीढ़ियोंके अतिरिक्त ऊपर चढ़नेको बिजलीका खटोला* लगा है। पहले तल तक खटोला तिरछा जाता है, फिर सीधे ऊपर चढ़ने लगता है। पहले ही तलसे वृक्ष, घर और मनुष्य छोटे-छोटे मालूम होने लगते हैं। दूसरे तलपर और छोटे। तीसरे तलसे तो नीचेके दरख्त झाड़से और चलते-फिरते मनुष्य चींटीसे दिखाई पड़ते हैं। नगर दियासलाईके डब्बेसे बने गृहोंकी पंक्तियोंका समूह मालूम होता है। ऊपरी तलोंपर शरबत और फोटोकी दूकानें हैं।

मीनारसे उतरकर हम उस चौरास्तेपर पहुँचे, जहाँ नेपोलियनकी लायी, पुरातन चित्रलिपिसे अंकित, मिश्री लाट खड़ी है। इसी अहातेमें फ्रांसकी आठ नगरियोंकी आठ सुन्दर स्त्रियोंकी पाषाण-मूर्तियाँ हैं। सामनेके बग़ीचेमें और भी कितनी ही पाषाण-मूर्तियाँ हैं। पेरिस कलाका स्वर्ग है। ऐसी दिव्य सुन्दर पाषाण-मूर्तियाँ, इतनी संख्यामें, पेरिससे बाहर नहीं मिल

---

*Lift.

सकतीं। लन्दनमें भी जगह-जगह स्थापित कितनी ही पाषाण-मूर्तियाँ हैं; किन्तु उनमें वह सौन्दर्य और भाव-पूर्णता कहाँ ?

फ्रांसमें भारतके दर्शन, धर्म, भाषा, इतिहास आदिके विश्व-विख्यात *लेवी*, *फिनियो*, *पेलियो*, *पेरलुस्की* जैसे प्रगाढ़ पण्डित रहते हैं। मेरी इच्छा थी, कुछके दर्शन करनेकी; किन्तु गर्मीकी छुट्टियोंमें सभी बाहर गये हुए थे; सिर्फ़ डाक्टर पेलियो घरपर थे। २५जुलाईको साढ़े तीन बजे हम उनसे मिलने गये। एक बड़े कमरेमें, नीचेसे ऊपर तक चीनी, संस्कृत आदिकी हज़ारों पुस्तकोंके ढेरमें, एक मेज़पर चीनी-भारतीय-भाषाओंके महा-पण्डित बैठे हुए थे। बड़े प्रेमसे मिले। मैंने अपने "अभिधर्म-कोश"की एक प्रति दी। उन्होंने बड़े चावसे "विज्ञप्तिमात्रता-सिद्धि"के मेरे द्वारा चीनीसे संस्कृतमें पुनरनुवादित अंशोंको देखा और सहर्ष सम्मति और सहायता प्रदान करनेका वचन दिया। मध्य एशियाकी मरुभूमिसे बहुतसे चीनी एवं संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थ, स्टाइनकी भाँति, आपने भी प्राप्त किये थे और कुछका तो आपने सम्पादन भी किया है। आपने आचार्य लेवीके घरपर भी फ़ोन किया; किन्तु वह बाहर गये हुए थे। वहाँसे उतरकर ज़रा देर गृहरक्षिणी वृद्धाके पास बैठे। मैंने अपनी टूटी-फूटी फ्रेंचमें बात छेड़ दी। लड़के-बच्चोंके बारेमें पूछा। उत्तर मिला—'ज सुइ तू-सेल', 'तू-सेल' (नितान्त अकेली-चिरकुमारी)। समझना मुश्किल हो गया; क्योंकि हमने तो भाषा पुस्तकसे पढ़ी थी; जहाँ लिखावटमें भेद होता है, बोलनेमें तो नमकका भी यही उच्चारण है। वहाँसे हम फ्रांसका नालन्दा *सोरबोन्* देखने गये। अनेक नोबल-पुरस्कारप्राप्त वैज्ञानिक यहीं अध्यापन करते हैं। दुनियाके सभी देशोंके विद्यार्थी यहाँ पढ़नेके लिये आते हैं। इमारतें पाषाणकी, सुदृढ़ तथा सुरुचिपूर्ण बनी हैं। जगह-जगह फ्रांसके महापुरुषोंकी कितनी ही मूर्तियाँ

रखी हुई हैं। रंगशाला बहुत ही सुन्दर है। दीवारोंपर फ्रांसके महान् दार्शनिकों, कवियों और विचारकोंके चित्र और मूर्तियाँ हैं। इस विद्यापीठ और विशेषकर रंगशाला (*Amphitheatre*) में प्रवेश करते ही दर्शकके सामने फ्रांसीसी जातिके शताब्दियों-का अद्भुत गौरवपूर्ण इतिहास आ खड़ा होता है, जिसके लिये उसका मस्तक झुके बिना नहीं रह सकता। फ्रांस और पेरिस रमणियोंके रँगे लाल अधरों, कुटिल कटे सुनहले केशों, नित्य नव-वेष-भूषाओं, और प्रतिदिनके नृत्यमहोत्सवोंमें नहीं हैं। असल पेरिस और फ्रांस जिसे देखने हों, वह *सोरबोन्*का दर्शन करे। १२५२ ई०में अथवा नालन्दा और विक्रमशिलाके विश्व-विद्यालयोंके ध्वस्त किये जानेके ५४ वर्ष बाद रोमक साधु *रोबर सोरबोंने* इस विद्यालय को, एक धर्मशास्त्रके विद्यालयके रूपमें, स्थापित किया था। *सोरबोन्का* वर्णन एक पृथक् लेखमें ही किया जा सकता है।

सोरबोन्के आसपास अनेक पुस्तक-विक्रेताओंकी दूकानें हैं। फ्रांसीसी भाषामें नाना प्रकारके साहित्योंका कितना विकास है, यह आपको तब मालूम हो जायगा, जब आप *हेरमान्* कम्पनीकी दूकानमें जाकर किसी साहित्यकी पुस्तकको माँगेंगे। आपको उत्तर मिलेगा—"अफ़सोस, हमारे यहाँ सिर्फ़ विज्ञानकी पुस्तकें रहती हैं।" यहाँ आपको वनस्पति-शास्त्र, प्राणिशास्त्र भौतिकी, रसायन, ज्योतिष् आदिकी विज्ञान-सम्बन्धी विक्रेय पुस्तकोंके अलग-अलग, काफ़ी बड़े-बड़े, सूचीपत्र मिलेंगे। दस क़दम आगे *लारूकी* दूकानपर जाकर यदि आप विज्ञानकी पुस्तक माँगें, तो उत्तर मिलेगा—"कृपया *हेरमान्*के यहाँ जाइये; आपको यहाँ साहित्यकी पुस्तकें ही मिल सकती हैं।" जिस वक्त हम *लारूके* यहाँ कुछ पुस्तकें ले रहे थे, उसी समय एक और प्रौढ़ सज्जन, बड़ी उत्सुकतासे, हमारी ओर देख रहे थे। हमारा काम ख़तम होते ही,

उन्होंने अपनी ओरसे ही पूछताछ शुरू की। थोड़ी बातचीतके बाद वह अपनी दूकानमें (*Hermannet Cie*) ले गये। तीन घंटे अतृप्त हो, हम लोग बातें करते रहे। *फ्रेमान् दम्पती* भारतकी यात्रा कर चुके हैं। वर्षसे ऊपर वह यहाँ रहे हैं। मेक्सिकोके निवासी होनेसे भारतके नरनारी, फल-फूल, जलवायु, सबमें उन्हें अपनी मातृभूमिकी मधुर प्रतिमा दिखाई पड़ती है। इतना प्रेम पहलेसे लेकर जो भारत जाय, उसके लिये भारतीयोंका हृदय क्यों न खुल जाय। पहले वह साबरमती गये। फिर, और जगहोंपर। बनारसमें वह महीनों रहे। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, जब ५, ६ वर्ष बाद भी मैंने उन्हें दर्जनों भारतीयोंके नाम लेते सुना। वह और उनकी धर्मपत्नी *मादाम् फ्रेमान्*, जो कि, एक फ्रांसीसी महिला हैं, दोनों ही भारतके प्रति अगाध प्रेम रखते हैं। अच्छा हुआ, जो उनको किसी चौकाधारीका सामना नहीं करना पड़ा। मैं डाक्टर चन्द्रदत्त पांडेसे मिलना चाहता था। उन्होंने उनका पता खोज निकाला; किन्तु मालूम हुआ, वह चले गये। उन्होंने डाक्टर बद्रीनाथ प्रसादका एक गणितपत्र देते हुए कहा, "डाक्टर प्रसादको कुछ ही समय पूर्व यहाँ गणित-विषयपर डाक्टरकी उपाधि मिली है। यहाँके चोटीके गणितज्ञोंको उनसे बहुत आशा है।" जिस वक्त थोड़ी-थोड़ी जनसंख्यावाले जर्मनी, इंग्लैंड जैसे देशोंको हम गणित, विज्ञान, कला आदिके क्षेत्रोंमें इतने अधिक पण्डित पैदा करते देखते हैं, उस वक्त हम भारतीयोंको आत्मग्लानि हुए बिना नहीं रहती। अफ़सोस तो यह है कि, ऊपरसे हम अपने पूर्वजोंके गौरव-गीत गाकर उसे उड़ा देना चाहते हैं! स्मरण रहे, हमारे मस्तकको मुर्दे ऊँचा न कर सकेंगे; इसके लिये हमें अपनी संख्याके अनुसार पर्याप्त रवीन्द्र और रमन पैदा करने पड़ेंगे। *फ्रेमान्* महाशयने यह भी इच्छा प्रकट की कि, 'भारतीय गणित

और ज्योतिषका तुलनात्मक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा जाय, तो मैं उसे छापनेके लिये तैयार हूँ।' मैंने कहा—"शायद इस कामको डाक्टर प्रसाद अच्छी तरह कर सकते हैं।" इतिहासमें देशभक्तिका खामखाह दखल अवाञ्छनीय है। उन्होंने यह भी शिकायत की कि अंग्रेज़ विद्वान् इस मर्ज़के सबसे बड़े मरीज़ हैं। आप उनके किसी विज्ञानके इतिहास-ग्रंथको ले लीजिये। उसमें आप देखेंगे कि, न्युटनसे पूर्व विज्ञान अन्तर्राष्ट्रीय चीज़ था; किन्तु न्युटनके बाद सभी मार्केके वैज्ञानिक सिर्फ़ इंग्लैंडमें हुए। मैंने भी इन्हींके द्वारा फ्रांसभाषामें प्रकाशित पुस्तक "*Les Plantest ce pu' elles sont, Ce pu' elles Font*" [वनस्पतिः क्या वह हैं और क्या वह करते हैं], जो कि कैम्ब्रिजके अध्यापक *सेवार्डकी* पुस्तकका अनुवाद है—देखी, तो उसमें कितने ही वनस्पतिशास्त्रियोंका नाम पाया; किन्तु जगदीश-चन्द्र वसुका मत, खण्डन करनेके लिये भी, कहीं उद्धृत नहीं पाया। *फ़ेमानूका* मत है कि, फ़्रेंच या जर्मन विद्वान् ऐसी ग़ल्ती कभी नहीं करते।

२६को जानेका निश्चय था; किन्तु अम्बालालजीने ऐसा तिकड़म लगाया कि, जाना नहीं हो सका। आज *मेत्रोकी* (सुरंग) रेलसे यात्रा करनेका निश्चय हुआ। इस भूगर्भचारी रेलका सारे शहरमें ताँता लगा हुआ है। ऊपर बड़े-बड़े महल खड़े हैं और उनके पचासों फ़ीट नीचे गाड़ियाँ दौड़ रही हैं। सड़ककी पगडंडीपर, जहाँ-तहाँ, साइनबोर्ड सहित नीचे उतरनेके रास्ते हैं। भीतर बिजलीसे रातका दिन हो रहा है। टिकट लीजिये। प्लेटफ़ार्मपर पहुँचिये। चन्द मिनटोंमें विद्युत्-वाहिनी गाड़ी आ खड़ी होगी। गाड़ी खड़ी होते ही दरवाजा स्वयं खुल जायगा! शीघ्र चढ़ जाइये। यह लीजिये, क्षणभरमें ही द्वार स्वयं बन्द हो गया और गाड़ी चल पड़ी। अपने स्टेशनपर उतर

जाइये। सीढ़ीसे ऊपर, सड़ककी पटरीपर, चले आइये और वहाँसे अपने गन्तव्य स्थानपर। १०-१५ फ्रांक देकर पेरिसमें जहाँ चाहिये, वहाँ चले जाइये।

आज भी घूमते-घामते हम *सोरबोन्* और *मोशये फ्रेमान्*के पास पहुँचे। हमारे रहते ही एक चौबीस, पचीस वर्षका तरुण आया। कोट, पटलून, बाल, टोपी सभीमें बेपरवाही झलक रही थी। लम्बी नुकीली नाक उस रत्नगर्भा यहूदी जातिको बतला रही थी, जिसने *आइन्स्टाइन्* और *बर्गसों* जैसी प्रतिभा की मूर्तियोंको प्रदान किया। *फ्रेमान्* महाशयने बतलाया—"कुछ ही वर्षोंमें यह भी विज्ञानका नोबुल-पुरस्कार लेगा।"

२७को एक मिश्री होटलमें मध्याह्न भोजन करनेका निश्चय हुआ। मालिक मिश्री सज्जनने उत्साहपूर्वक बतलाया, "मैंने महात्मा गांधीको, सामने बकरी दुहकर, यहीं दूध पिलाया था।" भोजन यहाँ भारतीय ढङ्गका भी था। मेरा भोजन सामिष था, जिसपर २७ फ्रांक खर्च हुए और भदन्त आनन्दका निरामिष, जिसपर भी २५ फ्रांक या चार रुपयेसे थोड़ा कम। सोचिये, चार रुपयेका भोजन सिर्फ एक वक्त! और यह कोई बहुत उत्तम भोजन नहीं। भारतमें शायद बारह-चौदह आनेसे अधिक इसपर नहीं लगते। भोजनके बाद अम्बालालजी अपनी कोठीमें ले गये। वहाँ उनके भागीदार यहूदी सज्जनसे भेंट हुई। वे हीरा-मोतीके व्यापारी हैं। यहूदी-जाति तो सौजन्यकी मूर्ति है। आखिर सहस्राब्दियोंसे देश विदेशमें मुसलमान, ईसाई शासकों द्वारा उत्पीड़ित होती हुई भी, बुद्धि और विनयके भरोसेपर ही तो, इतनी लक्ष्मी और सरस्वतीकी कृपापात्र बन सकी है। यहूदी महाशयने दूसरी बार आनेपर नगरसे बाहर अपने घर ले चलनेका आग्रह किया। वहाँसे वह अपनी ही मोटरपर हमें

परी-नोर् (उत्तरी पेरिस) स्टेशनपर ले आये । *बोलोंञ्की* (Bologne) गाड़ी तैयार थी । ३ बजकर १० मिनटके बाद हमारी गाड़ी रवाना हुई, अम्बालाल और उनके साथीने हाथ हिलाते "*आ-रिवा*"* किया । पेरिसकी मधुर स्मृति ले हम बिदा हुए । पेरिसमें रहते खर्च सत्तर-अस्सी रुपयेसे कम न हुआ होगा: लेकिन आग्रह करनेपर भी अम्बालालजीने वह हमसे नहीं लिया ।

जब दिल मधुरतासे सिक्त हो, तब बाहरी मधुरता और भी कई गुना बढ़ जाती है । दिनमें फ्रांसकी ऊँची-नीची शस्यश्यामला भूमिमें जगह जगह फलोंके बग़ीचे, सुन्दर दोमहले-तिमहले घरों-वाले साफ़-सुथरे गाँव, लाल, कपिल, पृथुल चरती गायें, खेत जोतते, गेहूँ काटते विशालकाय अश्व, श्वेत कृष्ण भेंड़ें चराती सुवर्णकेशी बालिकाएँ, सभी नेत्रोंके सम्मुख एक मनोहर चित्र उपस्थित कर रहे थे । समय देखनेके लिये हमारे पास घड़ी न थी; लेकिन उधर आनन्दजी धड़ाधड़ मिनटके साथ समय बतला रहे थे । देखा, हर एक गाँवके गिरजेमें घड़ी लगी हुई है । सात बजे बोलोंञ् पहुँचे । यह गाड़ी यहीं तक थी । अभी बन्दर कुछ दूर था । सामान नीचे रखा गया । सभी यात्रियोंकी दृष्टि हमारे पीले कपड़ोंपर थी । तुरत ही दूसरी गाड़ी आयी, कुलीने सामान रख दिया । ५ फ्रांक (बारह आने) मज़दूरोंको दिये । बन्दरपर उतरकर अब हमें इंग्लैंडकी सीमामें जाना था । कुली अपना नम्बर देकर सामान आगे ले गया । हम लोग अपना अपना पासपोर्ट हाथमें लिए, एकके पीछे एक, चलने लगे । ऑफ़िसर पासपोर्ट देखता जाता था ।

जहाज़ छोटा था । हमारा सामान सामने ही प्रथम श्रेणीकी जगहमें था; लेकिन पहले हमें मालूम न हुआ, जिसके लिये १२

---

*अलविदा

शिलिंग देना पड़ा। जब मालूम हुआ, तब जहाज़ चल ही नहीं रहा था, बल्कि उसपर महामायाकी सवारी हो रही थी। एक तो छोटा जहाज़, दूसरे प्रचण्ड हवाके कारण उठी भयङ्कर लहरें। अब भला किसको हिम्मत थी, तीसरा दर्जा खोलने की। बैठ गये। मैं इष्टदेवता मनाने लगा—कहीं आनन्दजी पहले जैसी अपनी सामुद्रिक वीरता न दिखाने लगें। मुश्किल यह थी कि, वहाँ वमन करनेका कोई पात्र भी न था। मैंने जहाज़ी झकोरेको कुछ कम करके कहना शुरू किया : कुछ उन्होंने भी अखबार ले हिम्मत बाँधनी शुरू की और कुछ यात्रा-समयकी अल्पता सहायक हुई। इस प्रकार पत-पानीसे हम लोग डेढ़ घंटेमें इस पार फाक्‌स्टोन पहुँच गये। जहाज़में मैं फ्रांसीसी सिक्कोंका अंग्रेज़ी सिक्का भुनाने लगा। जहाज़ हिल रहा था, गिननेमें देर हो रही थी। तरुणने कहा, 'मैं जल्दी गिने देता हूँ।' पीछे मालूम हुआ, गिनाई में ३०. ४० फ्रांक निकल गये! सन्तोष किया—'ग़रीब आदमी था, ५, ६, रुपये ले ही गया, तो क्या हुआ।'

पोर्टर (कुली) यहाँ भी अपना नम्बर दे, चमड़ेके फ़ीतेमें सूटकेस लटका, कन्धेपर रख, चलता बना। हमलोग आगे-पीछे हो, चलने लगे। यहाँ भी पासपोर्ट देखा गया। आगे एक जगह सबके सामानका बाज़ार लगा हुआ है। लोग अपना-अपना सामान खोले हुए हैं। चुंगीवाले अधिकारी देख-देखकर खड़ियाका निशान बनाते जा रहे थे। हमारे पास चुंगी लायक़ कोई चीज़ न थी। ६ बजेके क़रीब हम अपनी गाड़ीमें जा बैठे। हमारे खानेमें एक आयरिश, फ्रांसीसी और एक लन्दनवासी सज्जन बैठे हुए थे। सुनते आ रहे थे, अंग्रेज़ लोग बड़े चुप्पे होते हैं; लेकिन वहाँ तो अंग्रेज़ सज्जनने ही पहल की ऊपरकी धनिक-श्रेणियोंके साथ पहले दर्जेमें सवारी करते जो

अनुभव होता है, उसीपर साधारण नियम बना लिया गया है अथवा हो सकता है, हमारे पीले कपड़ेने भी उनकी मौनमुद्रा तोड़नेमें सहायता की हो। तबसे जब तक १०-५० बजे हम लन्दनके विक्टोरिया स्टेशनपर नहीं पहुँच गये, उनका सहृदयतापूर्वक आलाप चलता ही रहा। अंग्रेज़ सज्जन वाइलिनके गुणी थे। पीछे भी इन पौने दो महीनोंमें जो अनुभव हुआ है, उसके भरोसेपर कहा जा सकता है कि, अंग्रेज़-जातिमें भी सज्जनता किसीसे कम नहीं है। अपवाद कहाँ नहीं होता ?

स्टेशनपर महाबोधि-सभाके कई सज्जन, हमारे स्वागतके लिये, तैयार थे। उपमन्त्री दया हेवावितारणने हमें अपनी मोटरपर बैठाया और थोड़ी ही देरमें, २७ जुलाईके समाप्त होनेके पूर्व ही, हम अपने स्थानपर, ब्रिटिश महाबोधि सोसाइटी, ४१ लौसेस्टर, लन्दन, पहुँच गये।

३

लन्दन टावर

पाँच अक्टूबर (१९३२ ई०)को लन्दन टावर देखने गये, किन्तु उस दिन समय ऐसा गया था इसलिये, दूसरे दिन आने का निश्चय करके चले आये।

सात अक्टूबरको दोपहर बाद १॥ बजे ही चल दिये। साथ में मिस्टर *एलिस* हमारे ड्राइवर और श्री *करोलिस* प्रदर्शक थे। मोटरसे उतरते ही देखा, लोगोंकी आँखें मेरे पीले कपड़ों ही पर नहीं पड़ रही हैं, बल्कि *करोलिस* महाशय भी दृष्टिबाणके लक्ष्य बन रहे हैं। वस्तुतः *करोलिस* महाशय हमसे कम अजूबे नहीं थे। वह सिंहलके बौद्ध हैं। सिंहल (लंका)में आर्य, द्रविड़, हब्शी तीनों ही जातियोंका समागम हुआ है; इसलिये वहाँ आप तीनों ही टाइपके आदमी पा सकते हैं। हाँ, जहाँ तक मोटी नाक और मोटे होठवाले हब्शी शरीर लक्षणका सम्बन्ध है, उसका अभाव सा जरूर है। तो भी रंगमें कोइले और कौवे को मात करनेवाले लोग भी वहाँ मिलते हैं। *करोलिस* महाशय उतने काले तो नहीं हैं। हाँ, उनपर द्रविड़ शरीरलक्षण खूब घटता है। नाक लम्बाई-चौड़ाईमें बराबर (१०० नासिका मान), रंग काले और पक्केका दर्मियान; कुछ छोटा और औसत दर्जेका मोटा। *करोलिस* महाशयको यूरोप गये दस-पन्दह वर्ष हुए। पहले वह हाथीका महावत बनकर फ्रांस गये थे। वहाँ कई वर्ष

रहे। आप लिखने-पढ़नेसे नाम मात्र ही जानकार हैं। फ्रांसमें रहते हुए, उन्होंने कुछ पैसे भी जमा कर लिये; आखिर तनख्वाह ज्यादा होनेपर, उन्हें खर्च तो लंकाके अन्दाजसे करना था। पीछे लन्दन चले आये। यहाँ भी यदि मैं ग़लती नहीं करता, तो आये उन्हें १० वर्षसे ऊपर ही बीत गये। कई जगह नौकरियाँ करते रहे। अब पिछला मालिक कुछ महीने पूर्व मर गया। उसकी विलके लेखानुसार वहाँसे उन्हें एक सौ पौंड इनाम मिले। आजकल काम नहीं है, इसलिये बुद्धिस्ट-मिशनमें ही कुछ काम कर देते हैं, और खाने रहनेका इन्तजाम हो गया है। *करोलिस* पैसा खर्च करनेमें बड़े ही चुस्त हैं। इस वक्त, उनके पास एक हजार पौंड (१३, १४ हजार रुपये) हैं। आजकल एक भोजनशाला खोलनेकी फ़िक्रमें हैं। ख़ैर।

करोलिस महाशयकी कौन-सी चीज ऐसी थी, जिसके कारण लोग हमसे भी ज्यादा उनकी ओर आकर्षित हुए थे। *करोलिस* महाशय पक्के सनातनी हैं। कहते हैं, यदि यूरोपके लोग हमारे मुल्कमें जाकर हमारी वेषभूषा धारण नहीं करते, तो हम क्यों उनकी वेषभूषा यहाँ आकर धारण करें। उन्होंने काला तहमद, काला कोट पहना था। ऊपरसे लंकाके पुराने ढंगके लोगोंकी भाँति अपने लम्बे-लम्बे बालोंको स्त्रियोंके जूड़ेकी भाँति पीछेकी ओर सँभालकर बाँधे हुए थे। अब मालूम हुआ क्यों लोगोंकी नजरें उनके ऊपर ज्यादा रीझ रही थीं।

लन्दन टावर पुराने ढंगका क़िला है; १०७८ ई० अर्थात् प्राय: साढ़े आठ सौ वर्षोंसे वह क़िलेकी हैसियतसे काम दे रहा है। पहिले यहाँ राजाका निवास स्थान भी था; किन्तु १६६० ई०-के बाद कोई राजा चन्द दिनोंके लिये भी यहाँ रहने नहीं आया। हाँ उसके बाद यह खतरनाक राजनैतिक

क़ैदियोंका क़ैदखाना बन गया, किन्तु १८२० ई०से वह भी बन्द हो गया। अब एक तरहसे सैनिक संग्रहालयकी तरह काम आता है। यहाँके सिपाही कोट, कालर, जूते आदि कई सौ वर्ष पुराने सैनिकोंका अनुकरण करते हैं। सैनिक संग्रहालयके अतिरिक्त सम्राट्, सम्राज्ञी, युवराज आदिके मुकुट आदि भी इसीमें रक्खे जाते हैं।

महसूल देकर हम दर्वाज़ेसे भीतर घुसे। टावरकी खाईके बाद भी एक तरफ़ दीवार थी। टावर टेम्स नदीके दाहिने किनारेपर है। सभी चीज़ें पुरानी तो हैं ही, साथ ही मरम्मत करनेमें उनके पुरानेपनकी हिफ़ाजत करनेकी पूरी कोशिश की गई है। हम लोग टेम्सके किनारेकी ओरसे खाईके बाहर-बाहरसे आगे-आगे बढ़े। यहाँ कितनी ही तोपें रक्खी हुई हैं। सबसे पहले हम वेक फ़ील्ड टावरमें गये। यह सबसे पुराने टावरोंमें है। राजकीय मुकुट आदि इसीमें रक्खे रहते हैं। एक खूब चौड़े किन्तु अपेक्षाकृत कम ऊँचे फाटकसे हम भीतर घुसे। कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर दाहिनी ओर मामूली थर्ड क्लासके छोटी छतों वाले और बहुत कम जंगलों वाले मकान दिखाई पड़े। सिपाहीने जब बताया कि राजमुकुट इसीमें रहता है तो मज़ाक-सा मालूम हुआ, घिसी हुई सीढ़ियाँ बहुत सँकरी और अंधकारावृत थीं। लेकिन बिजलीकी रोशनीका प्रबन्ध था। ऊपर जाकर देखा, एक काँचके लम्बे-चौड़े ढाँचेमें राजभूषण, बिजलीकी रोशनीमें जग-मगा रहे हैं। सबसे ऊपरकी ओर सम्राटका मुकुट था। अनेक ऐतिहासिक हीरोंके अतिरिक्त तीन सौ बहुमूल्य रत्न इसमें जटित हैं। इसके मखमलका रंग सफ़ेद है। साँसमें सम्राज्ञीका मुकुट है जिसमें प्रसिद्ध कोहनूर जड़ा हुआ है। युवराज वेल्स राजकुमार-का लाल मखमली मुकुट भी पासमें रक्खा हुआ है। यहीं जी०

सी० आई० ई०, के० सी० आई० ई० आदि पदवियोंके तग़मे भी रक्खे हुये हैं।

वहाँसे चलकर *ह्वाइट टावरमें* (सफ़ेद गुम्बद) गये। यह टावरकी सबसे पुरानी इमारत चार तल्लोंकी है। दीवारें पत्थरकी और बहुत ही मोटी हैं। सीढ़ियाँ शताब्दियोंसे लोगोंके पैरोंके रगड़के कारण घिस गई हैं। किसी समय दर्बार लगता था, राजाओंकी बैठक होती थी; आजकल इसे पुराने हथियारोंका संग्रहालय बना दिया गया है। संग्रहमें तलवार आदमियों और घोड़ेके जिरहबख़्तर, धनुष, पुराने तमंचे, बन्दूकें सभी हैं। और सभी चीज़ोंको शताब्दीके क्रमसे उस वक़्तके सैनिकों, अफ़सरों, राजाओंकी पोशाक, बालके कटाव आदिपर सजाया गया। यहाँ आपको *वोल्फ़* और *वेलिंग्टन* जैसे प्रसिद्ध अंग्रेज़ सेनापतियोंके अपने हथियार देखनेको मिलेंगे। यद्यपि प्रदर्शकका कोई खास प्रबन्ध नहीं है तो भी पहरेदारसे पूछनेपर वह आपकी सहायता करेगा, और सभी चीज़ोंपर लिखकर कार्ड भी लगे हुए हैं। किसी समय इसके कुछ भागोंमें कितने राजापराधी पुरुषोंको क़ैद रक्खा गया था; उन्होंने अपने दीर्घ कारावासकी स्मृतिमें पत्थरोंपर कुछ लेख पंक्तियाँ छोड़ी हैं; जिनको बड़ी हिफ़ाजतसे रक्खा गया है। ऊपर ही एक छोटा-सा गिर्जा है जिसमें बैठनेके सामान बहुत पुराने हैं। बैठनेकी छोटी-छोटी कुर्सियाँ तो अपने यहाँकी पुराने समयकी ओठङ्गन् लगी मचियोंका स्मरण दिलाती थीं। यहाँके एक ओर क़ैदियोंको सासत देनेके सामान, पैर-हाथ-गर्दन फँसानेका *औज़ार* तथा दो पटरोंके बीचमें रखकर शरीरको पीसनेवाले हथियार भी रक्खे हैं। यहीं वह पीसा और कुल्हाड़ा भी है, जिससे राजद्रोही लार्ड लोवट्को ६ अप्रैल सन् १७४७में शिरच्छेद किया गया था। टावरमें वस्तुत: इतने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषोंको राजाके विरुद्ध किसी-न-किसी अपराधमें क़तल

किया गया है। यद्यपि शताब्दियोंसे वह ख़ून ख़राबी बन्द है, तो भी अभी उसके दरोदीवार उस ख़ूनकी गंध, उस ज़ुल्मकी ओर मानो आज भी निकलकर दर्शकके ऊपर प्रभाव डाले बिना नहीं रहतीं।

ह्वाइट टावरसे निकलकर अब हम *व्यूशम्प बोशा* टावरकी ओर चले। रास्तेमें पत्रविहीन वृक्षोंके नीचे जञ्जीरसे घिरे उस स्थानको देखा, जहाँपर *एनाँ बोयलिन, केथराइन हवाई* और *जेनी ग्रे*—इङ्गलैंडकी तीन रानियोंका शिरच्छेद हुआ था। जेनी ग्रे-के बारेमें कहा जाता है, कि वह १ जुलाई १५५३ ई०में रानीके तौरपर टावरमें प्रविष्ट हुई। लेकिन उसकी प्रतिद्वंदिनी रानी मेरी सिंहासन दख़ल करनेमें सफल हुई। और इस प्रकार नौ ही दिन बाद कुल्हाड़ेसे उसका शिर धड़से अलग कर दिया गया। उसके सिंहासनारोहणमें सहायक होनेके कारण राजपुरोहित *क्रेमर* को मृत्युदण्ड मिला। उनसे कोशिश की गई कि वह अपनी भूलको स्वीकार करें, किन्तु वह वीरतापूर्वक अपने विचारोंपर दृढ़ रहे, और अपने विचारोंके लिये २१ मार्च १५५६को उन्हें अपने प्राणोंकी आहुति देनी पड़ी। रानी जेनीके बारेमें एक अंग्रेज लेखकने लिखा है—'यदि वह अपने अपराधोंके कारण दण्डनीया थी तो उसका तारुण्य उसे क्षमाका पात्र बतलाता था।' वस्तुतः यदि आप ढूढ़ें कि इङ्गलैंडसे निरंकुश राजशासन कैसे सदाके लिये विदा हुआ, तो शताब्दियों तक होती राजाओंकी इन ख़ून ख़राबियोंपर आपका ध्यान गये बिना नहीं रहेगा; जिनका कि यह टावर साक्षी रहा है।

ब्युशम्प टावर क़ैदियोंका ख़ास जेल था। यहाँपर उन क़ैदियोंके पत्थरोंपर खुदे बहुतसे लेख हैं, जिनमेंसे किन्हीं-किन्हींपर उन्होंने अपने अपराधोंको भी लिखा है। जो लेख बुरी अवस्थामें थे, उनपर काँच लगाकर सुरक्षित किया गया है।

वहाँसे *ब्लाडी टावर*की ओर गये। जिस वक्त राजाकी स्वेच्छाचारिता इतनी बढ़ी हुई थी कि वह बड़े-से-बड़े आदमीको अपनी अँगुलीके इशारेसे नेस्तनाबूद कर सकता था; उस वक्त जो कोई भी टावरके भीतर जानेके द्वार इस *ब्लाडो-टावर* (ख़ूनी गुम्बद)से भोतर जाता था, उसके जीते जी बाहर लौटनेकी आशा नहीं होती थी। इसीलिये दण्डितोंकी ओर सहानुभूति रखने वालोंने इसे ख़ूनी गुम्बदका नाम दिया है, किन्तु साथ ही राजाकी ओर सहानुभूति रखने वालोंका भी अभाव न था; तभी तो नावपर लाये गये क़ैदी जिस द्वारसे क़िलेमें प्रविष्ट कराये जाते थे, उसे देशद्रोही द्वार (ट्रेटर्स गेट) कहा जाने लगा। आँख वालों को लन्दन टावर इस बातकी शिक्षा स्पष्ट शब्दोंमें देता है, कि स्वेच्छाचार चिरकाल तक सफल नहीं हो सकता। हमारे भारतीय राजा लोग विलायत जानेके बड़े शौक़ीन हैं? क्या कभी उन्होंने टावरकी इस शिक्षाको अपने कानोंसे सुना?

टावरके भीतरी हिस्सेसे निकलकर जब हम खाईकी ओर आये, तो आगेकी ओर उसी सूखी खाईमें सिपाहियोंको परेड करते देखा।

४

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय

केम्ब्रिज और आक्सफ़ोर्ड इंगलैंडके दो विश्वविद्यालय हैं, यह लड़कपनसे ही सुना करता था। विलायत पहुँचनेपर उनके देखनेका विचार था। आखिर एक दिन छात्रोंकी ओरसे निमन्त्रण आया; और, मैं, भदन्त आनन्द तथा श्रीगुणवर्द्धन २६ अक्टूबरके दस बजे तड़केकी गाड़ीसे रवाना हुए। "तड़के" मैं जान बूझकर कह रहा हूँ; क्योंकि जाड़ेमें नौ-दस बजे तक वहाँ सूर्यदेवकी लाल दुलाई उतरती ही नहीं! मध्याह्न-भोजन वहीं करनेका निश्चय हुआ था। आज हमारे सौभाग्यसे कुहरा नहीं-सा था; इसलिये हम रेलसे बाहरके दृश्य देख सकते थे। यद्यपि खासी सर्दी थी; तथापि रेलका डिब्बा भापसे गर्म था। वहाँ सर्दीका कहाँ पता था। कई मिनटोंमें हमारी ट्रेन लंदनसे बाहर निकली या यों कहिये कि, मुख्य नगरसे बाहर निकली। अब रेलके पास ही दूर तक काँच जड़कर बने हुए लगातार घरौंदे दिखलाई पड़ने लगे। ये हैं लंदनके साग-भाजीके खेत। जाड़ेमें पौधे सर्दीको बर्दाश्त नहीं कर सकते, साथ ही उन्हें रोशनी भी चाहिये; इसलिये यह शीशमहल नहीं, काँचकी झोपड़ियाँ बनी हैं। इनमेंसे गर्म पानीसे भरे मोटे नल गये हुए हैं, जिनके कारण घरोंको, इच्छित तापमानमें, गरम रखा जा सकता है।

अब हमारी गाड़ी बराबर बाहर निकलती जा रही थी। हम कितने ही स्टेशन पार हो रहे थे। सबसे पहली बात जो स्टेशनके प्लेटफ़ार्मपर देखनेमें आती थी, वह पहियेवाली गाड़ीमें सजाये दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र-पत्रिकाएँ तथा पुस्तकें थीं। हाँ, पुस्तक, पत्रों तथा चाकलेटके डब्बोंको सजाकर बनी एक कोठरीके झरोखेसे झाँकती दो आँखें भी अक्सर दिखाई पड़ती थीं। सड़कके किनारेके खेतोंमें कहीं-कहीं, मोटे ढंगके टोप-पतलून पहने, किसान हल जोत रहे थे। उनके हलोंके घोड़े महाकाय थे। अभी बर्फ़ नहीं पड़ी थी। इस समय खेतको अच्छी तरह जोतकर हवा दे रखनेके बाद बर्फ़ पड़नेपर खेतकी उर्बरा शक्ति और भी बढ़ जायगी। हाँ, भूमि हमारे यहाँ जैसी न समतल थी, न गढ़वाल अलमोड़ेकी भाँति क्यारियोंकी सीढ़ी जैसी बनी। वह थी कहीं भीटेकी तरह ऊपरको उठती और कहीं भठ गये पोखरेकी भाँति नीचे ढलती। जहाँ-तहाँ हृष्ट-पुष्ट गायें चर रही थीं। यूरोपमें कहीं भी दुबले-पतले पशु नहीं मिलते। वह तो, हम गो-भक्तोंके देशके लिए, छोड़ दिये गये हैं!

केम्ब्रिज लन्दनसे पचास मीलसे कुछ ही ऊपर है। पहुँचते देर ही क्या लगती है; तिसपर हम लोग आस-पासके गाँवों, खेतोंको देखते और टिप्पणी करते जा रहे थे। गाँवोंमें वहाँ भी महल नहीं खड़े हैं; तो भी सभी मकान पक्के, दोमहले, दोतल्ले और साफ़ होते हैं। जोताई करने, घासके ढेरको रखने आदिकी सभी बातोंमें एक नियम दिखाई पड़ता था। थोड़ी देरमें बायीं ओर, आगेकी तरफ़, एक गिरजाका विशाल शिखर दिखाई पड़ा। साथियोंने कहा—"आ पहुँचे केम्ब्रिजमें!" स्टेशन अच्छा साफ़-सुथरा था। मि० ब्लोफेल्ड और *श्रीसेननायक*, लेनेके लिये, स्टेशनपर पहुँचे हुए थे। १२ बज

रहे थे; इसलिये पहले तो झटपट जाकर पेटपूजा करनी थी, जिसमें कहीं तमादी न लग जाय !

हम लोगोंके खानेका नियम मालूम था; इसलिये भोजन तैयार था। हाँ, इतनी ग़लती ज़रूर थी कि, वहाँ श्वेत शालग्राम (अण्डे)की कढ़ी भी थी। उन्हें क्या मालूम था कि, भदन्त आनन्द ऐसे परम सात्विक भोजनसे भी परहेज़ करते हैं! ख़ैर। वहाँ फल, दूध, मक्खन, रोटी सब काफ़ी परिमाणमें मौजूद था। हम लोगोंने अच्छी तरह भोजन किया।

भोजन समाप्त होते ही फ़ोनपर टेक्सी लानेके लिये कह दिया गया: और हम लोगोंको सीढ़ीसे उतरते-उतरते वह दरवाज़ेपर आ लगी। अब हमें विश्वविद्यालय देखना था। मि० ब्लोफेल्ड हमारे प्रदर्शक थे। ये बड़े ही उत्साही बौद्ध नवयुवक हैं। इनकी नानी साइबेरियाकी एक मङ्गोल बौद्ध महिला थीं, जिन्होंने किसी रूसी सज्जनसे ब्याह किया था। उनकी लड़की या हमारे मित्र-की माँ ने एक अंग्रेज़ सज्जनसे ब्याह किया था। इस प्रकार मि० ब्लोफेल्ड अपनेको नवागत बौद्ध न मानकर जन्मसिद्ध बौद्ध होनेका अभिमान रखते हैं। उनकी विश्वविद्यालयकी पढ़ाई समाप्त होनेको है। पूर्वमें आकर, बौद्ध आदर्शके अनुसार, सेवा करनेका इरादा रखते हैं।

थोड़ी देरमें टेक्सीने हमें क्वीन्स कालेजके सामने ले जाकर खड़ा किया। केम्ब्रिजको कोई छोटी जगह मत समझिये। उसके दर्जनों कालेजों और छ-सात हज़ार विद्यार्थी ही एक छोटा शहर बना देते हैं! उसपर उनके कामकी चीज़ोंको मुहय्या करने तथा सेवा करनेके लिये भी तो और काफ़ी आदमियोंकी ज़रूरत होती है? केम्ब्रिज-आक्सफ़ोर्डमें यही नहीं कि वहाँ बहुमूल्य विद्याका भण्डार प्रचुर परिमाणमें वितरणके लिये तैयार है

और उसके सुन्दर मकानोंकी पङ्क्तियाँ एवम् हरी घासोंके क्रीड़ाक्षेत्र तथा प्रमोदक्षेत्र बड़े ही चित्ताकर्षक हैं; बल्कि यह उतने ही पुराने हैं, जितने कि, अंग्रेज जातिकी सभ्यता। यहाँके कतिपय कालेजोंकी स्थापनाके समयको यहाँ देता हूँ, जिससे पाठक इसे अच्छी तरह समझ सकते हैं—

पीटर हाउस कालेज	ई० सन १२८४
क्लेर कालेज	१३२६
कोर्पस क्रिस्टी कालेज	१३३२
पेम-ब्रोक् कालेज	१३४६
कैस कालेज	१३४८
क्राइस्ट कालेज	१४४२
कीन्स कालेज	१४४७
सेंट केथरिन् कालेज	१४७५
जीसस् कालेज	१४९७
सेंट जान्स कालेज	१५०९
मेडलिन कालेज	१५४२
ट्रिनिटी कालेज	१५४६
एम्मानुएल कालेज	१५८४
सिढ्नी-ससेक्स कालेज	१५८९
किंग्स कालेज	१७२४
डानिङ् कालेज	१८०७
गर्टन् कालेज	१८४९
न्युहम् कालेज	१८७५
सेल्विन् कालेज	१८८२

सबसे पुराना कालेज १२८४में स्थापित हुआ था। तबसे अब तक इस विश्वविद्यालयका अविछिन्न जीवित सम्बन्ध अंग्रेज

जातिसे है। सात सौ वर्षोंका यह घनिष्ठ सम्बन्ध, किसी भी जातिके लिये, "यत्परं नास्ति" प्रेम और अभिमानका कारण हो सकता है। उदाहरणार्थ आप नालन्दा और विक्रमशिलाको ले लीजिये। नालन्दा पाँचवीं शताब्दीमें, महाविद्यापीठके रूपमें, स्थापित हो चुकी थी वैसे तो, विहार या मठके रूपमें, वह बुद्धके समय (ईसा पूर्व पाँचवीं छठीं शताब्दी) हीसे था; और, विक्रमशिलाकी भी स्थापना, एक विद्यापीठके रूपमें, आठवीं शताब्दीमें हुई थी। यह दोनों ही विश्वविद्यालय ११६८—११६६ ई० में नष्ट किये गये थे। उस समय नालन्दाके साथ सात सौ वर्षोंसे अधिक का और विक्रमशिलाके साथ चार सौ वर्षोंका इतिहास सम्बद्ध था। वह जीवित सम्बद्ध पिछले सात वर्षोंसे टूट गया है; और, हमारी जाति उन स्थानों तकको भूल गयी थी। किन्तु अब उनके प्रति हमारा प्रेम और आदर-भाव कितना बढ़ता जा रहा है? ऑक्सफ़ोर्ड-केम्ब्रिजके विद्यार्थी यह सोचकर कितने प्रभावित होंगे कि, जिन कोठरियोंमें वह रह रहे हैं, जिन मेज़ोंपर वह खाना खा रहे हैं जिन आँगनों (Courts) में टहल रहे हैं, उनमें *न्यूटन*, *मेकाले*, *मिल्टन*, *स्पेंसर* और *पिट* जैसे राजनीतिक, उन्हींकी तरह रहते, खाते, टहलते पढ़ रहे थे!

केम्-ब्रिज (केमका पुल) नाम केम् नदीके पुलके कारण हुआ है। यह भी कहते हैं कि, ग्रेटा-ब्रिज (ग्रेटा नदीके पुल)-से कैंटा-ब्रिज होकर केम्ब्रिज, १६०० ई०के क़रीब, बना है। ग्रैंटा नदी अब भी, उसी नामसे, पुकारी जाती है।

भारतकी तरह यूरोपमें भी विद्यापीठोंका आरम्भ भिक्षुओं-के मठोंसे हुआ। यद्यपि उनमें अब वह मठ नहीं हैं; (माफ़ कीजिये, संस्कृतमें मठ शब्द, छात्रावासके लिये भी प्रयुक्त होता

है) तो भी उनमें बहुतसी पुरानी बातें मौजूद हैं। वहाँके हर एक विद्यार्थीको एक खास प्रकारका काला गौन उसी प्रकार पहनना अनिवार्य है, जैसेकि, तिब्बतके डेपुङ् और सेराके महाविहारोंमें — जिनमें क्रमश: आठ और छ हजार विद्यार्थी रहते और ढ़ते हैं—एक प्रकारके पीले गौनको (जोकि, कन्धेकी चुनावट आदिमें उनसे मिलता है) और एक प्रकारकी विचित्र टोपीको अवश्य पहनना पड़ता है। केम्ब्रिज-आक्सफोर्डके कालेज, विषयके अनुसार, साइंस कालेज, आर्टस कालेजके तौरपर, विभक्त नहीं हैं; बल्कि ठीक वैसे ही, जैसे डेपुङ् और सेराके खम्-सङ् और ङ-सङ् (कालेज) विषयसे विशेष सम्बन्ध नहीं रखते। स्मरण रहे, तिब्बत के यह महाविहार यद्यपि १४१५ और १४१८ ई०में स्थापित हुए; तो भी वह अपनेसे पूर्वके सम्-ये आदि विहारोंके नमूनेपर बने थे, जो स्वयं नालन्दा और विक्रमशिलाकी नक़ल थे।

अब आइये, कुछ कालेजोंकी सैर कीजिये। यह कालेज दर-असल दोमहले (कहीं-कहीं तिमहले भी) मकानोंसे घिरे एक चौड़े आँगन हैं। किन्हीं-किन्हीं कालेजोंमें आँगनोंकी संख्या तीन-चार भी हैं। इन मकानोंमें विद्यार्थियोंके रहनेकी छोटी-छोटी कोठरियाँ और भोजनशालाएँ भी हैं। व्याख्यानशालाएँ प्राय: अलग हैं। मकान जितने ही पुराने हैं, उतने ही उनके दरवाज़े छोटे और कोठरियाँ तङ्ग। पुराने भवन अधिकांशत: ईंटोंके बने हैं।

आइये, पार्कर्स पीससे शुरू करें। यह हरी घासोंका मखमली फ़र्शवाला विशाल क्रीड़ाक्षेत्र है। प्राय: हर समय यहाँ खेलनेवाले मिल जायँगे; विशेषत: आजकल, जब कि, किताबका कीड़ा होना अपमानकी बात समझी जाती है। यहाँसे आगे बढ़िये और

बायीं तरफ़ दो-तीन टेढ़ी-मेढ़ी गलियों जैसी सड़कोंको पारकर अब आप कोर्पस् क्रिस्टी कालेज के द्वारपर पहुँच गये। देखिये, कैसा क़िलानुमा द्वार है। भीतर घुसिये, पगडण्डियोंके साथ हरी घास बिछा आँगन है। मकानको कुर्सीके नीचेपन तथा छोटे दरवाज़ोंसे (नाक-भौं न सिकोड़िये) यह १३५२ ई०में स्थापित हुआ था। अँग्रेज़ चाहते तो, इसकी जगह एक विशाल अप-टू-डेट पत्थरका महल खड़ा कर देते; किन्तु वह ६०० वर्षोंके इतिहासको कैसे बतला सकता था। इसे कोर्पस्क्रिस्टी और भगवती कुमारी मरियम नामक दो शिल्पकारसंघोंने बनवाया था। पुरानी इमारतको बनाये रखनेपर ही तो कह सकते हैं—"This College is unique among the Colleges in respect of its Democratic origin" (इसका आरम्भ जनसत्ताके होनेसे यह कालेज और कालेजोंमें अद्वितीय है)। जनसत्ताके भावोंको जागृत करनेके लिये यह कितनी सजीव शिक्षा देता है! हमारी साँचीमें भी पूर्व द्वारका तोरण, विदिशाके हाथी-दाँतके शिल्पियोंके संघ द्वारा ई० पू० दूसरी सदीमें बनवाया गया था, जो कला-सौन्दर्यमें, संसारमें, अपने ढंगका अद्वितीय है। हमारे बालकोंको प्रजासत्ताक भाव अब जागृत करनेमें उससे कितनी शिक्षा मिलती, यदि वह उसके नीचे बसते? क्षमा कीजिये, मैं लिखते वक्त विषयसे बहका नहीं जा रहा हूँ; बल्कि देखते वक्त भी मेरे चित्तकी वही दशा थी। वस्तुतः तुलना करके देखनेपर ही मुझे उनका महत्त्व अधिक मालूम हुआ। मुझे तो ख्याल आता था, क्या नालन्दा विहारियोंका *आक्सफोर्ड-केम्ब्रिज* नहीं बन सकता? वह भी राजधानी पटनासे उतनी ही दूर है, जितनी कि, लन्दनसे उक्त विद्यालय! उसके पीछे भी ७-८ शताब्दियोंका भव्य इतिहास है! यदि इन्हें *मिल्टन* और *स्पेंसर* जैसे कवि, *न्यूटन* और *डार्विन* जैसे वैज्ञानिक तथा दार्शनिक पैदा करनेका

अभिमान है, तो *नालन्दा*को भी *दिङ्नाग*, *चन्द्रकीर्ति*, *धर्मकीर्ति* और *शान्तरक्षित* जैसे अद्भुत दार्शनिक, *चन्द्रगोमी* जैसे महा-वैयाकरण, *सरहपाद*, *भूसुक* जैसे हिन्दीके कवि पैदा करनेका सौभाग्य प्राप्त है। यदि आज दुनियाके कोने-कोनेसे इन विश्व-विद्यालयोंमें विद्यार्थी आते हैं, तो किसी समय *नालन्दा*में भी *ईरान*, *मध्य एशिया*, *चीन* और *कोरिया*, *चम्पा* और *कम्बोज*, *जावा* और *सुमात्रा*, *बर्मा* और *सीलोन*के विद्यार्थी पढ़ने आते थे। यदि *केम्ब्रिज* और *आक्सफोर्ड* अपने तीन सौ वर्ष पुराने मेज़ों, चार सौ वर्ष पुराने चूल्हों, सात सौ वर्ष पुरानी दीवारों और दरवाज़ोंको दिखलाकर, उस समयका जीवन्त चित्र, हमारे सामने, रख सकते हैं, तो नालन्दा भी छठी सदीकी दीवारों और द्वारों, आठवीं सदीके कूओं, सातवीं और नवीं सदीके ताम्रपत्रों, हज़ार वर्ष पुराने चूल्हों, नाना मूर्तियों और स्तूपों तथा पुराने आचार्योंमेंसे किन्हीं-किन्हींकी हड्डियों तकको हमारे सम्मुख रखकर हमारे इतिहासको क्या सजीव नहीं दिखा सकता ? दर-असल उन विश्वविद्यालयोंको देखते समय क्षण-क्षणमें मेरा मन, शरीरको इंगलैंडमें छोड़कर, नालन्दामें पहुँच जाता था ! उनकी दीवारोंकी सुरक्षित अवस्थाको देखकर मन कहता था—नालन्दाकी भी दस-बारह हाथ ऊँची दीवारोंकी तथा और सभी नीचेकी चीज़ोंकी भी रक्षा की जा सकती है। यदि युक्तप्रान्तमें बनारस, प्रयाग, लखनऊ, अलीगढ़ और आगरामें पाँच विश्वविद्यालय हो सकते हैं, तो विहार क्या दो नहीं रख सकता ? नालन्दामें परीक्षकोंका नहीं, शिक्षक-विश्वविद्यालय बन सकता है। उन्हीं पुराने मकानोंपर फौलादी ढाँचो (Steel frame) वाली दीवारें उठाई जा सकती हैं। इस प्रकार निचली पुरानी कोठरियाँ भी काम आ सकती हैं। और ऊपर दूसरी और नयी बन सकती हैं। आज जो पुरातत्व-विभागको उन

ठंडी दीवारोंकी, इतना रुपया खर्च करनेपर भी, रक्षा करनेमें सफलता नहीं मिल रही है, वह भी उससे आसानीसे हो सकती है। नालन्दा भिक्षुओंका तथा एक विशेष धर्मका विश्वविद्यालय था, यह कोई आपत्ति नहीं। आक्सफोर्ड-केम्ब्रिज भी तो एक समय ईसाई भिक्षुओं और भिक्षुणियोंके ही मठ थे? वहाँ तो उन्हें जबर्दस्ती हटना पड़ा; यहाँ तो वह स्वयं हट गये हैं! आज न हो, कभी भी विहारियोंको, नालन्दाके शवमें, प्राण-प्रतिष्ठा करनी ही होगी! यह काम बीस-पचीस लाख रुपयोंके लिये रुका नहीं रह सकता!

अच्छा, यह तो "प्रथमे ग्रासे मक्षिकापात:" हुआ। कालेजमें घुसते ही आपका इतना समय मैंने ले लिया। अब थोड़ेसे कुछ और संस्थाओंके बारेमें कहकर अपनी लेखनी और आपके चित्तको विश्राम देता हूँ। उक्त कोर्पस् क्रिस्टी कालेजमें द्वारसे घुसनेपर बायीं ओर, उत्तरकी तरफ़, शाला (जर्मन और फ्रेंच Salle, अंग्रेज़ी Hallमें 'स' का 'ह') है। तीन ओर विद्यार्थियोंकी कोठरियाँ हैं। दक्खिन तरफ़ (पश्चिमसे पूर्व) रसोईघर, शाला, साधारण गृह (जिसके ऊपर स्थविर (=वृद्ध, Master)का निवास-गृह है) तथा पुस्तकालय है। आजकलके ज़मानेमें यदि किसी भूले-भटकेको खुदामियाँकी .खुशामद करनी होती है, तो वह पड़ोसके सन्त बेनेडिक्टके गिरजेमें चला जाता है, जिसका शिखर केम्ब्रिजकी सबसे पुरातन इमारत है। शाला भोजनागारका काम देती है, जिसमें मेज़ोंके पास कुछ निचले पीठ, विद्यार्थियोंके लिये, हैं और एक ओर मेज़ोंके पास ऊँची कुर्सियाँ, अध्यापकोंके लिये, हैं। कालेजके हर एक विद्यार्थीको, कुछ नियमित दिनोंमें, यहाँ भोजन करना ज़रूरी है। सारी दुनियामें जात-पाँतका स्वप्न देखनेवाले अभागे हिन्दुओंको मालूम होना चाहिये कि, जब वेल्सके राजकुमार (युवराज) आक्स-

फोर्डके मेड्लिन कालेजके विद्यार्थी थे, तब उन्हीं बेंचोंपर अपने कालेजके साधारण मोचीका लड़का भी उनके साथ खाना खा सकता था। सीढ़ीकी दाहिनी ओर निचले तलकी कोठरीको जरा ध्यानसे देखिये। इसीमें शेक्सपियरके समकालीनोंमें अत्यन्त प्रतिभाशाली कवि और नाट्यकार *क्रिस्टोफर मार्लो* (मृत्यु १५६३) कभी रहा करता था, जिसकी स्मृतिमें दीवारपर पट्टी लगा दी गयी है। सर *फ्रान्सिस* ड्रेक और सर *निकोलस* बेकन् इसी कालेजके विद्यार्थी थे।

सड़क पकड़कर जरा और दक्खिन चलिये। यह पीटर्स हाउस कालेज है। यह १२८४ ई०में स्थापित किया गया था अर्थात् विक्रमशिलाविहार सुलतानगंज, भागलपुरके ध्वस्त किये जाने (११६६ ई०)के ठीक ८५ वर्ष बाद। यह केम्ब्रिजका सबसे पुराना कालेज है। हर एक कालेजकी बनावटमें कुछ भेद है; और, कुछ भाग पीछेसे घटाये-बढ़ाये गये हैं; तो भी विद्यार्थियोंके छोटे-छोटे कमरे (बहुत पीछे बने कालेजोंको छोड़कर) आदि वैसे ही हैं।

इसी सड़कसे जरा और दक्खिन, *फिट्ज़् विलियम* संग्रहालयकी (Museum) भव्य इमारत देखिये। १८१६ ई०में वाइकाउंट फिट्ज़ विलियमने अपने चित्रों, हस्तलिखित ग्रन्थों और पुस्तकादिके अनमोल संग्रहको १ लाख गिन्नी (आजकलके हिसाबसे प्रायः २० लाख रुपये)के साथ विश्वविद्यालयको अर्पण किया। उसीसे यह संग्रहालय बना है। मालूम हुआ, त्याग हमारे ही बाप-दादोंकी सम्पत्ति नहीं है। यदि अंग्रेज जातिमें यह गुण न होता, तो सिर्फ धोखे-धड़ीके भरोसे वह इतनी बड़ी न बनती। इनमें इतालियन, डच, फ्लेमिश, इंगलिश, सभी कलमोंके चित्र शामिल हैं। *हेरिस*ने अपने चित्र-संग्रहको

दस हज़ार गिन्नियोंके साथ तथा डाक्टर *ग्लेशर*ने अपने चीनी बर्तनोंको दस हज़ार गिन्नियोंके साथ प्रदान किया था। इनके अतिरिक्त और भी बहुत प्रकारके अनुपम चित्र और बहुमूल्य हस्तलेख, इस संग्रहालयमें, संगृहीत हैं।

आइये, अब हम फिर उसी सड़कसे उत्तरकी ओर *कोर्पस् क्रिस्टी* होते लौटें। जिसमें लम्बी-ऊँची छतोंवाला गिरजा है, वही किंग्स् कालेज है। छठे *हेनरी* बादशाहने, १४४६ ई०में, इसकी आधार-शिला रखी थी; किन्तु बहुत काल बाद, कितने ही राजाओंके कालमें होकर, १५१५ ई०में यह बनकर तैयार हुआ। यद्यपि वह समय गृह-कलहका था, तो भी इसका काम धीरे-धीरे बराबर होता रहा। इंगलैंडमें लम्बाकार इमारतोंका यह सर्वोत्कृष्ट नमूना है। यह कालेज *ईटन* स्कूलसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। दोनोंके लाञ्छन एकसे हैं। बादशाहने बहुतसे विशेषाधिकार दे रखे थे, जिन्हें १८५१ ई०में कालेजने छोड़ दिया। तो भी सीनेट हाउसमें इसीके ग्रेजुएट सर्वप्रथम प्रविष्ट किये जाते हैं। यूनिवर्सिटीके प्रोक्टरको, अपने अधिकारसे, इसके फाटकके भीतर घुसनेका अधिकार नहीं है।

सीनेट हाउस और यूनिवर्सिटीकी लाइब्रेरी भी दर्शनीय हैं। आक्सफोर्डके बोडलियन पुस्तकालय तथा लंदनके ब्रिटिश म्युज़ियमकी भाँति इस लाइब्रेरीको भी ग्रेट ब्रिटेनमें प्रकाशित प्रत्येक पुस्तककी एक कापी पानेका अधिकार है।

१५४६ ई०में आठवें हेनरीने ट्रिनटी कालेजकी स्थापना की थी। इसमें किंग्स हाल भी मिला हुआ है, जिसे तृतीय एडवर्डने, १३३६ ई०में, बनवाया था। इसके महाप्राङ्गणकी इस सीढ़ीपर नजर डालिये। इसी सीढ़ीपरकी उपरली कोठरियोंमें *न्यूटन*, *मेकाले* और *थैकें*ने निवास किया था। इसका इतना बड़ा हाल

है, तो भी विद्यार्थियोंकी संख्या इतनी अधिक है कि, उन्हें बारी-बारीसे, तीन बारमें, भोजन करना पड़ता है। लाइब्रेरीकी तरफ़, दाहिने तल्लेमें आपको वह जँगले मिलेंगे, जिनसे महाकवि बैरन कभी झाँका करते थे!

जिस जगह सेंट जान्स कालेज है, वहीं ११३५ ई०में, सेंट जान्स अस्पताल स्थापित हुआ था। पीछे यह उपेक्षित होकर छोड़ दिया गया था। १५०६ ई०में राजा हेनरी पाँचवेंकी माँने इसे पुनः स्थापित किया। महाकवि वर्डसवर्थ इसीके विद्यार्थी थे।

'केम्ब्रिज यूनियन सोसाइटी' केम्ब्रिजके विद्यार्थियोंकी बड़ी सभा है, जहाँ वह हर तरहका वाद-विवाद किया करते हैं। यहीं इंगलैंडके कितने ही भावी मन्त्री तैयार किये जाते हैं।

संग्रहालयोंको देखना हो, तो डानिङ् स्ट्रीटमें चलिये। यहाँ आमने-सामने दो इमारतोंकी कतारें हैं! एक ओर आयुर्वेदका संग्रहालय है, दूसरी ओर रसायनका इनके पीछे प्राणि-विद्या और खनिज-विद्याके संग्रहालय हैं। भूगर्भशास्त्र, पुरातत्त्व और मानवतत्त्वके संग्रहालय भी यहीं, पासमें ही, हैं।

वैज्ञानिक प्रयोगशालाओंके लिये केम्ब्रिज संसार भरमें प्रसिद्ध है। विज्ञानमें इसकी वैसी ही ख्याति है, जैसी कि, आक्सफोर्डकी साहित्यमें। केम्ब्रिजका पूरा वर्णन न इस छोटे लेखमें आ सकता है, न एक दिनमें सबको देखा जा सकता है।

व्याख्यान और रेल, दोनोंके लिये, देर हो रही थी। आकर व्याख्यान दिया; और, शामकी रेल पकड़कर रातको फिर लंदन पहुँच गये।

५

लंदनमें

२७ जुलाईको लंदन पहुँचनेकी बात लिख चुका हूँ। ग्लासेस्टर रोडमें ४१ वें नम्बरका मकान, महाबोधिसभाका मकान है। यह स्थान लंदनके प्रसिद्ध नगरोद्यान रिजेंट्स पार्कके बिलकुल पासमें है। जितने रुपयेमें यह मकान खरीदा गया, जल्दी न की गयी होती, तो उतनेमें ही और अच्छा मकान मिल सकता था। मकानमें तीन मंज़िलें ऊपर हैं और एक तल्ला जमीनके नीचे। पीछे एक छोटा-सा बाग़ है, जिसमें चिनार और दूसरे वृक्ष हैं। हम लोगोंका डेरा दूसरे तलके एक बड़े कमरेमें लगा। इस कमरेमें गैसकी एक अँगीठी भी थी जो जाड़ेमें हमारे बड़े काम आयी। बिजलीकी रोशनी और हवा आदिका सुन्दर प्रबन्ध था। इसमें दो चारपाइयोंके अतिरिक्त एक मेज़, तीन-चार कुर्सियाँ और दो सामान रखनेके दराज भी थे। इसी तलकी एक कोठरीमें स्नानागार था और दूसरीमें पायखाना। सारा प्रबन्ध देखकर मुझे पूरा संतोष हो गया। हमारे पाचक विलियम महाशय लंकावासी हैं; किन्तु १०-१२ वर्षसे लंदनमें ही रह गये हैं। ब्याह भी कर लिया है और दो-तीन बच्चे भी हैं। यह देखकर अफ़सोस होता कि, उन्हें सप्ताहमें एक बार घर जानेको मिलता था। यह मुहल्ला मध्यवित्त लोगोंका था; इसलिए मकानोंका किराया ज्यादा है। भला ऐसे मुहल्लेमें वे सपरिवार कैसे रह सकते थे ? उनके साथ बर्तन धोने आदिका

काम करनेवाली नौकरानी अंग्रेज़ थी। सबेरे वह हमारे लिए दूध, डबल रोटीके अतिरिक्त थोड़ा फल और विलायती मिठाई दे दिया करते थे। साढ़े ग्यारह बजे कभी छठे-छमाहे अर्थात् बहुत दिनों बाद, इच्छा हुई, तो कुछ चावल भी दे दिया, नहीं तो उबाली सब्ज़ियाँ, पनीर, मक्खन, टोस्ट की हुई रोटी और फल आदि दे दिया करते थे। खानेके बारेमें तो हम निश्चिन्त थे। विलियम अच्छे पाचक पहले भी थे और विलायतमें जाकर तो उन्होंने इस विषयके विद्यालयमें कुछ शिक्षा भी ग्रहण की थी।

दोपहरको "इवनिंग स्टैंडर्ड" और "इवनिंग न्यूज़" नामक दो दैनिक पत्रोंके संवाददाता आये। मुझसे जो पूछा, मैंने उत्तर दे दिया। इनमें एक संवाददात्री थीं। उसने आप ही कहा कि, "मेरा पिता मोतीहारीमें रहता है। मैं वहाँ बहुत रही हूँ"।

विलायती पत्रोंके विषयमें अपना अनुभव आगे लिखूँगा।

मकानमें हम लोगोंके अतिरिक्त पाँच विद्यार्थी भी रहते थे। इनमें एक पी-एच० डी० के और दूसरे डाक्टरीके विद्यार्थी थे। सभी बौद्ध और लङ्काके निवासी थे। यह बात मुझे खटकती ज़रूर थी। धर्म-प्रचारकोंको जिस देशमें जाना है, वहाँके लोगोंमें रहना अच्छा होता है। हाँ, हमारे पास जो रिजेंट्स पार्क था, उसमें जन्तु-संग्रहालय भी था। रातमें सोते हुए जब मैंने सिंहकी गर्जना सुनी, तब पहले मुझे भ्रम-सा मालूम हुआ; पर पीछे पता लगा, यही जन्तु-संग्रहालय है।

लन्दनकी ऋतु आदिके बारेमें इतना ही कहना है कि, वह असूर्य्यम्पश्य देश है। जब कभी सूर्यके दर्शन हो जाते हैं, तब लोग "कैसा सुन्दर दिन है" की रटन लगाने लगते हैं; और,

४

आधे पागलकी भाँति कामसे फ़ारिग़ होते ही नदी, समुद्र या बग़ीचेकी ओर दौड़ने लगते हैं।

३१ जुलाईको हमारे स्वागतमें सभा हुई। जैसा रिवाज है वैसा दोनों ओरसे भाषण हुए। उसी दिन मैंने देखा कि, जिस कमरेमें हम लोगोंका साप्ताहिक अधिवेशन होता है, उसमें अस्सी-नब्बे कुर्सियोंसे अधिक नहीं आ सकतीं। बहुतसे लोगोंको इस कारण बाहर खड़ा होना होता है। पासमें उतना ही बड़ा एक और कमरा था। हमने ट्रस्टियोंको लिखा कि, दोनों कमरोंका एक हाल बना दिया जाय। फलतः २५ सितंबरको हमारा अधिवेशन नये हालमें हुआ। मेरी दिनचर्या इस प्रकार थी—रातको बारह बजेसे पहले तो कभी सोता नहीं। आमतौरसे दो और तीन बजेके बीचमें सोता था; चार बजे भी सोना मामूली बात थी। कारण यह कि, हमारा स्थान यद्यपि केन्द्रसे कुछ हटकर था; तथापि वहाँ बड़ी-बड़ी मोटरबसों और मोटरोंका हल्ला था। हमसे पचास ही गज़के फ़ासलेपर रेलवे लाइन थी, जिसपर गाड़ियाँ अक्सर दौड़ा करती थीं। उस वक़्त तो मालूम होता था, जैसे सारे मकानोंको जुड़ी आ गयी है। बारह बजे रातके बाद यह हल्ला कम हो जाता था। उस वक़्त मैं अपनी चारपाईपर लेटकर या कुर्सीपर बैठकर लिखनेका काम करता था। साढ़े छः बजे उठ जाता था। फिर मुँह-हाथ धोकर जलपान। तब तक दो-तीन दैनिक पत्र आकर पड़े रहते थे। घंटा पौन घंटा उनमें लगता था। यह मैं अपने लिये कह रहा हूँ। भदन्त आनंद समाचार-पत्रोंके उतने प्रेमी नहीं हैं। इसके लिये मैं उन्हें बधाई देता हूँ। लन्दन ही नहीं और जगहोंपर भी रातको जागकर काम करनेमें मेरा मन ख़ूब लगता है। हाँ, अख़बार हमारे पास कौन-कौन आते थे? अनुदार-दलका "टाइम्स" और मजदूर-दलका "डेली हेरल्ड"। ये तो निरन्तर आते थे।

इनके अतिरिक्त उदार-दलका "स्टार" और स्वतन्त्र मजदूर-दलका साप्ताहिक "न्यू स्टेट्समैन" तथा साम्यवादी "डेली वर्कर" भी मैं पढ़ा करता था। वस्तुत: पश्चिमके देशोंके अखबारोंमें पार्टीबाज़ी इतनी ज़बर्दस्त है कि, जब तक आप सबके मतोंको न पढ़ें, सत्य तक पहुँचना असम्भव है। विलायती अखबार जितना "झूठहि लेना झूठहि देना, झूठहि भोजन झूठ चबेना" की नीतिको बर्तते हैं, उसका शतांश भी हमारे अखबारोंने अभी नहीं सीखा—(कौंसिलके चुनावके वक्तको बातोंको लेकर भी) हाँ, तो अखबार पढ़नेके बाद मैं सो जाता था। हर दूसरे दिन स्नान होता था। जिस दिन बारी होती थी, ग्यारह बजे उठकर गुसलखानेमें चला जाता था और फिर ११॥ बजे खानेपर बैठ जाता था। इस सोनेके प्रोग्राममें कभी-कभी बाधा भी हो जाती थी, जब कोई मिलनेवाला आ जाता था। दोपहर बाद फिर पढ़ने-लिखनेका काम शुरू होता था या यदि कभी किसी दोस्तसे मिलने जाना होता या ब्रिटिश म्युज़ियममें पुस्तकावलोकन करना होता, तो उसका भी यही समय होता। हमारे लन्दन पहुँचनेके वक्त पौने नौ बजे तक बिना चिराग़के हम पढ़ सकते थे, बशर्ते कि, कुहरा घना न हो। घने कुहरेमें दोपहरको भी बाज़ वक्त रोशनीकी ज़रूरत पड़ जाती थी। पीछे दिन छोटा होते-होते पाँच ही बजे अँधेरा होने लगता। शामके वक्त थोड़ा महाबोधि-भवनके बाग़ीचेमें ही टहलता था। इसके बाद फिर वही काम। रातको तो खाना था ही नहीं।

लन्दनमें भारतीय विद्यार्थियोंके रहनेके लिए कई छात्रावास हैं, जिनमें गावर स्ट्रीटमें ईसाई नौजवान सभा (Y. M. C. A.)का भारतीय छात्रावास भी है। ३ अगस्तको हम लोग इस छात्रावासको देखने गये। इसमें भारत और लङ्का, दोनोंके विद्यार्थी हैं। बिहार और युक्तप्रान्तके विद्यार्थी बहुत कम हैं।

शायद जाते भी कम होंगे। उस दिन और प्रान्तोंके छात्र मिले; किन्तु बिहारके न मिल सके थे। दूसरी बार गया तो पण्डित शिवशङ्कर झा (मधुबनी, दरभंगा)के पुत्र मिले, जो वहीं आई० सी० एस०की तैयारीके लिये आये थे। लन्दन छोड़नेसे पूर्व यह भी पता लग गया कि, वह प्रवेशिका परीक्षामें पास हो गये। अन्तिम परीक्षा पास हो जानेपर वह प्रथम मैथिल ब्राह्मण आई० सी० एस०* होंगे। वहीं यह भी पता लगा कि, एक दूसरे† झा भी पी-एच० डी० की तैयारी कर रहे हैं, और, उस समय जर्मनी गये हुए थे। मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ कि, जो मैथिल ब्राह्मण जाति पाँचवीं सदीके आरम्भसे लेकर आजतक (वच्चा झा और बालकृष्ण मिश्रके रूपमें) अद्भुत दार्शनिक पैदा करनेमें सारे भारतमें प्रथम रही है, वह इतने दिनों तक संसारके रङ्गमञ्चपर आकर, अपने दिमागी जौहर दिखानेसे, सिर्फ़ अपने कूपमण्डूक विचारोंके कारण, वञ्चित रह गयी। अब उसमें भी कुछ ऐसे सपूत या कपूत तो पैदा होने लगे!

मेरे लन्दनके साढ़े तीन मासके निवासमें दर्जनों बार अखबारवाले आये। ५ अगस्तको "डेली मेल"का एक संवाददाता आया। "डेली हेरल्ड"के तो कई बार आये। इनके सम्बन्धमें एकाध मनोरञ्जक बात कहकर इस विषयको मैं खतम करना चाहता हूँ। श्रीतेलकर एक महाराष्ट्र सज्जन हैं, जो कितने ही वर्षोंसे लन्दनमें रहकर अखबारनवीसीका कार्य कर रहे हैं। उन्होंने मुझसे एक बार तिब्बतयात्राके बारेमें पूछा। मैंने बतला दिया। इसके बाद उन्होंने इस विषयमें एक लेख लिखकर "डेली मेल"को दिया। "डेली मेल"के आफ़िससे एक आदमी

*श्री चन्द्रशेखर झा, I. C. S.

†डाक्टर श्री सुधाकर झा, M. A., Ph. D. (पटना यूनिवर्सिटी)

तस्दीक करानेके लिये लेखको मेरे पास ले आया। उसमें लिखा था—"भिक्षु राहुल एक बार तिब्बतके घोर जङ्गलमें जा रहे थे। उस समय लपलपाती तलवार लिए आठ डाकू आ गये और उन्होंने भिक्षुको घेर लिया। वह चाहते ही थे कि, तलवारको चला दें कि, इसी समय जङ्गलसे गरजता हुआ एक शेर आ कूदा और डाकू जान लेकर भाग गये!" इस प्रकारकी और भी कुछ मेरी दिव्य शक्तिकी बातें लिखी थीं (पीछे इन अखबारोंके झूठसे मुझे इतनी घृणा हो गयी कि, मैंने किसीकी कटिंगको रखना पसन्द न किया)। पाठकोंको बड़ा ही मनोरञ्जन होता, यदि मैं अखबारके ही शब्दोंमें इन बातोंको कहता। शायद हेडिंग था—"अद्भुत शक्तिवाला बौद्ध भिक्षु, जिसे कभी किसी हिंसक जन्तुने नहीं छेड़ा।" खैर। मैंने उन सारी अद्भुत चमत्कारवाली बातोंको स्याहीसे काट दिया और लेखको उनके हवाले किया। दूसरे दिन देखता हूँ कि, तेलकर महाशयके लेखमें जो दो-चार सच्ची बातें थीं, उनको भी उड़ा दिया गया है और जिन बातोंको मैंने काट दिया था, वह सब छाप दी गयी हैं। कुछ तो मोटे टाइपके साथ! तेलकरजी मुझसे कहा करते थे कि, "यहाँ अखबारवाले ऐसी ही सनसनीखेज खबरें चाहते हैं। हम क्या करें?" किन्तु पहले तो मुझे विश्वास नहीं होता था।

मेरे सिरपर तो खैर कुछ* मोजिज़ाकी बातें ही थोपी गयी थीं; इस घटनाके कुछ दिनों बाद प्रोफ़ेसर ल्यू लन्दनमें आकर हमारे स्थानके पासमें ही ठहरे। उनसे भी मंचूरियाके बारेमें एक संवाददाता मुलाक़ात करने आया। उन्होंने सारी बातें ठीक तरहसे बतलायीं। वह मंचूरियाकी पूरी जानकारी रखते थे। लीग आफ़ नेशन्स ने (अन्तर्जातीय सभा) जो मंचूरियाके लिए

*मुअजिज़ः (अरबी)—करामात, अद्‌भुतचर्या।

जाँच कमीशन बैठाया था; उसके चीनी सदस्यके आप सलाहकार थे। ख़ैर, दूसरे दिन क्या देखते हैं कि, ल्यू महाशय सुर्ख़ चेहरेके साथ मुझसे पूछ रहे हैं—"आपने आजके "डेली हेरल्ड"-में मेरे इंटरव्यूको पढ़ा है?" मैंने कहा—"आपका तो कोई ब्यान नहीं देखा।" उन्होंने कहा—"एक दोस्तने देखा है और कहा है कि, बहुत बुरा छपा है।"

मैं उस दिनके "डेली हेरल्ड"की कापी उठाकर ग़ौरसे देखने लगा। दर-असल वह छपा था। मैं सारे अख़बारको प्रत्येक लाइनको पढ़नेवाला थोड़ा ही हूँ। देखा तो उसमें लिखा है—मंचूरियाके विश्वविद्यालयके एक बड़े प्रोफ़ेसर लन्दनमें आये हुए हैं। वह मंचूरियाके डाकुओंके बारेमें बड़ी जानकारी रखते हैं (याद रहे, यह वह वक़्त था, जब अंग्रेज़ युवक-युवतियोंको मंचूरियामें डाकू उठा ले गये थे; और, उस वक़्त उनकी ख़बरें बड़े-बड़े टाइपोंमें छपा करती थीं, जिस कारण सारे मुल्कमें सनसनी फैली हुई थी)। प्रोफ़ेसर ल्यू कहते हैं कि, वह डाकू साधारण डाकू नहीं हैं। उनको जंगलकी ऐसी-ऐसी बूटियाँ मालूम हैं, जिनके इस्तेमालसे वह अन्तर्धान हो सकते हैं। वह उन बूटियोंकी मददसे अपने साथियोंके कटे सिरको जोड़ देते हैं। घोर जंगलोंमें वह अपने देवताओंकी पूजा करते हैं, जिसके प्रतापसे वह जापान क्या सारी दुनियाकी शक्तिको चैलेंज कर सकते हैं!

मैं स्मृतिसे लिख रहा हूँ। कहीं मुझे भी पाठक विलायतका संवाददाता न समझ लें। इसके बाद संवाददाताने यह भी जोड़ दिया कि, प्रोफ़ेसर ल्यू स्वयं उन डाकुओंकी अद्भुत पूजाओंमें शामिल हुए हैं। पूरा कालम था!

प्रोफ़ेसर ल्यूकी अवस्थाके बारेमें कुछ न पूछें। वह कह रहे थे—पढ़नेवाले क्या कहेंगे? जिस चीनी जातिका एक बड़ा

प्रोफ़ेसर ऐसी वाहियात बातें कह सकता है, वह कितनी गिरी होगी ! देश-भाई पढ़ेंगे, तो मेरे बारेमें क्या ख़याल करेंगे ? मैंने उन्हें बहुत समझानेकी कोशिश की और कहा कि, यही यहाँके अख़बारोंका आम क़ायदा है। अपना दृष्टान्त भी दिया; किन्तु वह काहेको माननेवाले थे। उन्होंने अख़बारको खण्डनात्मक पत्र भी लिखा; किन्तु अख़बारवाला उसे छापनेको बाध्य थोड़े ही था !

६ अगस्तकी शामको हम लोग हेम्पस्टेड गये। यह एक स्वाभाविक भारी जंगल है, जिसे उद्यानका रूप दे दिया गया है। लन्दनसे लगा हुआ है और हमारे यहाँसे तो क़रीब आध घंटेका ही रास्ता है। लन्दन शहर वैसे तो समतल भूमिमें नहीं बसा हुआ है। यह जगह विशेषकर इसकी प्रधान सड़क एक पहाड़ीकी रीढ़पर जैसी जाती है। यहाँ खड़े होकर लन्दनको दूरतक देखा जा सकता है। सायंकालको झुण्ड-के-झुण्ड लोग उद्यानचारणके लिए आते हैं। कहीं माँ-बाप अपने बच्चों और कुत्तोंको लिए टहल रहे हैं। कहीं प्रेमी-प्रेमिका गलबहियाँ डाले टहल या लेटे हुए हैं। कहीं वृद्ध-वृद्धाएँ आपसमें वार्त्तालाप करते जा रहे हैं। यह वन भी ऊँचा-नीचा है और इसके सभी वृक्ष जङ्गली हैं। सिवा उनकी रक्षा और रास्तोंके और कोई काम आदमीकी तरफ़से यहाँ नहीं है।

भारतमें रहते सुना था कि, बिड़लाने लन्दनमें एक हिन्दू-मन्दिर जैसी संस्था, "आर्यभवन" के नामसे, स्थापित की है। हमारे यहाँ भी टेलीफ़ोन था। मैंने गाइड उठाकर ढूँढ़ना शुरू किया, तो वह नाम मिल गया। दो-तीन दिन फ़ोन किया; किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। देखनेकी बड़ी इच्छा थी। हेम्पस्टेड जाते हमने ड्राइवरको कहा कि, ज़रा उधरसे लेते चलो। ख़याल नहीं, उस दिन श्रीदयाहेवावितारण (अनागारिक धर्मपालके भतीजे और लन्दन बौद्ध मिशनके मैनेजर) स्वयं अपनी मोटर चला

रहे थे या उनका ड्राइवर चलाता था। दयाको लन्दनमें रहते कई वर्ष हो गये। उनको लन्दनकी गलियाँ जितनी मालूम है, उतनी उनके ड्राइवरको भी मालूम नहीं हैं। खैर, आर्यभवनके मिलनेमें कोई दिक़्क़त नहीं हुई। यह बड़े आदमियोंके मुहल्लेमें अच्छी जगह पर है। जाकर देखा, तो ताला लगा हुआ है। लन्दनमें क्या, किसी भी बड़े शहरमें पड़ोसीको पड़ोसी नहीं जानता; किन्तु यहाँ हमारे सौभाग्यसे पड़ोसीको पता था। उसने बतलाया कि, मकान तीन माससे बन्द है। वार्डर, पुजारी कोई नहीं है। इतना लक्षण तो हमने भी द्वारपर देखा कि, ड्योढ़ीका निचला भाग मैलसे काला-सा हो गया है। आप इस श्रेणीके अंग्रेज़के घरमें कभी ज़रा भी इस तरहकी गन्दगी नहीं पायेंगे। वहाँ तो लोग रोज़ एक बार किवाड़, खिड़की, चौखट, सीढ़ी, पात्रदान आदिको साफ़ करते हैं। बिछे हुए कालीनोंको भी गर्द-चूस झाड़ुओंसे साफ़ करते हैं। मालूम होता है, आर्यभवनके सञ्चालकोंने भी अपने यहाँके निरक्षर और सफ़ाईकी मूर्ति महाराज या बाबाजीसे ही लन्दनमें रसोई-पूजा लेना चाहा। तभी तो यह गन्दगी थी! लन्दन या यूरोपमें कोई भी धार्मिक संस्था चलानेमें, वहाँके लोगों और हवा-पानीका भी ख़याल करना होगा। वहाँके लिए पुजारी और प्रचारक अधिक संस्कृत, शिक्षित और निरालस होना चाहिए। ख़ैर, आर्यभवनको इस अवस्थामें देखकर बड़ा खेद हुआ!

आज सूर्य्य दिखलाई पड़ते थे; इसलिए लन्दन-निवासी ख़ुशियाँ मना रहे थे। लन्दनमें आम तौरसे गर्मीमें तापमान ७० और ८० डिग्रीके बीचमें रहता है। ग्यारह अगस्तको तापमान छायामें ८८° (बाहर १३५°) डिग्री हो गया था और इतनेमें ही लोग व्याकुल हो गये थे। अख़बारोंमें पढ़ा कि, कुछ आदमियोंकी, इस गर्मीके कारण, मृत्यु भी हो गयी। रातको

लोग घरोंसे निकलकर सड़कोंकी पगडण्डियोंपर सो गये थे। १८ अगस्तको तापमान ६१° हो गया था। उस दिन तो मैंने भी कुछ गर्मी महसूस की। काँचके बड़े-बड़े जङ्गलोंको खोल देनेपर भी रातको बदनपर चादर नहीं डाल सका।

८ अगस्तको दो पंजाबी नौजवान मिलनेके लिए आये। इनमें एकका नाम श्रीयुत रामचन्द्र इस्सर (रावलपिण्डीके ब्राह्मण) और दूसरेका नाम हंसराज खन्ना बी० ए० था। यह दोनों विद्यार्थी नहीं थे। व्यवसायके लिये क़िस्मत-आज़माई कर रहे थे। छः-सात साल हो गये, लन्दनमें आये। दोनोंने शादी भी यहीं कर ली है। रामचन्द्रको एक तीन वर्षका लड़का कल्याण-दास है, जिसकी माँ-नानी नाम ठीकसे न उच्चारण कर सकनेसे 'केलन्-केलन्'' पुकारती हैं। हंसराजजीको एक लड़की है। रामचन्द्रजीकी स्त्री टाइप राइटिंग और शार्ट हैंड जानती हैं और हंसराजजीकी स्त्री पेरिसके कोटोंकी माहिर हैं। दोनोंका जीवन बड़े साहसका है। रामचन्द्रजी दो भाई थे। लड़कपनमें ही इन्हें घोड़ेपर चढ़नेका शौक़ था। मिडिल स्कूलकी पढ़ाईमें भी ये विदेश-यात्राका स्वप्न देखा करते थे। आखिर बड़े होनेपर भाग गये। बम्बई या कराचीके बन्दरपर, इन्होंने जहाज़में खलासीकी नौकरी कर ली! कई बार इस मुल्कसे उस मुल्क गये। जहाज़-का काम सीखकर इन्होंने कुछ अच्छी जगह भी हासिल कर ली। फिर उन्हें मालूम हुआ कि, उसी कामके लिये जो खलासी भारतमें भरती किये जाते हैं, उन्हें तो बीस रुपया महीना मिलता है; और, जो लिवरपूलमें (इंगलैंड) भरती होते हैं, उन्हें २०) हफ़्ता मिलता है! फिर क्या था, उन्होंने इंगलैंड पहुँच कर अपने जहाज़से छुट्टी ले ली। अंग्रेज़ अधिकारियोंमें, विशेष कर व्यापारियोंमें यह भी गुण है कि, यदि कोई नौकर उनकी मर्ज़ीके बिना भी नौकरी छोड़ देता है, तो उसके कामके सर्टी-

फिकेटको देते वक्त, खामखाह बुरा नहीं लिख देते। रामचन्द्रजी फिर इंगलैंडसे जहाज़में भरती हो गये। तनखाह भी अंग्रेज़ मजदूरों-जैसी मिलने लगी। लोग उनको देखकर आम तौरसे ग्रीक या स्पेन-निवासी कहते हैं। लम्बा-चौड़ा शरीर, गोरा चेहरा और लम्बी नाक। सिर्फ़ बाल काला है। नये जहाज़में फ़ुर्ती और कामकी मुस्तैदीके कारण वह इंजिनके काममें ले लिए गये। कुछ दिनों तक उन्होंने यह नौकरी की। कई मुल्कोंकी सैर की। फिर उन्होंने लन्दनकी एक भोजनशालामें नौकरी कर ली और कुछ ही दिनोंमें हेडवेटर (परिचारकोंके मुखिया) हो गये। अब उनको तनखाह भी दो या तीन पौंड हफ़्ते मिलती थी। कुछ पैसे जमा हो गये, फिर उन्होंने अपनी एक दूकान खोल ली। तब उनकी शादी भी हो गयी थी। दूकान चलने लगी। इसी बीच संसारमें मंदीका चक्कर चल गया! बड़े-बड़े व्यापारी दिवालिए हो गये। फिर बेचारे रामचन्द्रके नये, छोटेसे पौधेका क्या कहना! तो भी वह साहसकी मूर्ति हैं। जब मैं वहाँ था, तब उन्हें बेकारीकी मदसे बाप-बेटे-बीबीके लिए २१ शिलिंग (१४ रु०) सप्ताह मिलते थे। अक्सर छोटे छोटे दूकानदारोंको थोक बेचनेवालोंके यहाँसे माल देकर, वह दो-चार शिलिंग रोज़ कमा लेते थे। उन्होंने किसी जगह एक हाटमें भी अपनी दौरी-दूकान (एक बक्समें कुछ सौदा) रखी। एक बार कोई सिनेमा-कम्पनी एक भारतीय फ़िल्म तैयार कर रही थी। उसे कुछ हिन्दुस्तानियोंकी ज़रूरत थी। रामचन्द्रजी पहुँच गये। इन्हें तो उसने ले ही लिया और २०-२५ आदमियोंको लानेको भी कहा। इन्होंने जमा कर दिया। मैंने जिस समय लन्दन छोड़ा, उस समय रामचन्द्र फ़िल्मस्टार बने हुए थे। वहाँ इनकी क़द्र क्या? हाँ, बेकारीमें इन्हें ३० शिलिंग (२० रु०) रोज़ मिलते थे। यही बहुत है। इधर भदन्त आनन्दके पत्रसे

मालूम हुआ कि, पीछे उन्होंने एक भोजनशाला खोली थी; किन्तु वह चल न सकी। चाहे कुछ भी हो, रामचन्द्र बड़े साहसी और व्यवहार-कुशल हैं। क्या जाने, किसी गहरे गोतेमें, उन्हें किसी बड़ी सफलताका रत्न मिल जाय। वह कह रहे थे कि, माँ लिखती है कि, "एक बार बहू-बेटेको लेकर चले आओ। मैं अब मृत्युके घाटपर बैठी हूँ।" मैंने कहा, उन्हें बहूसे वही पंजाबिन बहूका ख़्याल होगा। केलन और मिसेज़ इस्सरका थोड़े ही होगा।

हंसराजकी रामकहानी पूरी पूछ भी न सका। इतना सुना कि, उनके पिता धनी आदमी हैं। हंसराजने बी० ए० पास कर घर छोड़ दिया। कुछ दिनों बर्मामें रहे, फिर अमेरिका गये। वहाँसे, कई वर्ष हुए, लन्दन पहुँचे। यह सब बापकी कमाईमें आग लगाकर नहीं। लन्दनमें उन्होंने भी अपनी दूकान खोली; किन्तु संसार-व्यापिनी मंदी पहुँच आयी! दूकान घाटा उठाकर तोड़ देनी पड़ी। तो भी रामचन्द्रकी तरह कोई छोटा-मोटा काम करके काम चलाते थे। मेरे रहते हुए उनके घरसे चिट्ठी आयी कि, उनके घरमें काम करनेवाले (शायद बड़े भाई) तपेदिकसे मर गये! उनके लिए जहाज़का किराया आदि देकर, पिताने आनेके लिए लिखा था। वह अपनी जन्मभूमि शायद स्यालकोट-को लौटनेवाले थे।

पंजाबियोंके तीन सर्वोत्तम गुण हैं—साहस, व्यवसाय-बुद्धि और अतिथि-सेवा। इन तीन गुणोंको इकट्ठे मैं भारतके और किसी प्रान्तके आदमियोंमें नहीं पाता। साहसके जीवनका मैं स्वयम् लड़कपनसे प्रेमी रहा हूँ; इसलिए ऐसे जीवनको कहीं पाकर, मैं उसे प्रकट करनेके लालचको संवरण नहीं कर सकता।

६

लन्दनमें साढ़े तीन मास (ख)

समय-समयपर लन्दन-म्युज़ियमके पुस्तकालयमें जाकर पुस्तकावलोकन करना मुझे ज़रूरी था। लेकिन इसके लिये पहले मेम्बर बनना होता है। ८ अगस्तको मैं, श्री श्रीनिवासाचारके साथ म्युज़ियमके डाक्टर बर्नेटके पास गया। उनसे बात-चीत हुई। उन्होंने साधारण वाचनालय (Common Reading Room) और छात्र-वाचनालय दोनोंके लिये मेरी सिफ़ारिश कर दी। उसी दिन मुझे मेम्बरीका टिकट मिल गया। मैं अपने पहलेके लेखोंमें बहुत लिख चुका हूँ कि, हर जगह मेरे पीले वस्त्रोंको देखकर लोग कौतुकाक्रान्त हो, उधर नजर फेरे विना नहीं रहते थे। इन बातोंको मेरी सारी यूरोप-यात्राके बारेमें समझना चाहिये। जब यूरोपके लोगोंको भिक्षुओंके पीले वस्त्र वहाँ कभी देखनेको नहीं मिलते, फिर उन्हें क्यों न अद्भुत-सा मालूम हो। म्युज़ियमके पुस्तकाध्यक्षोंको भी मैंने बोडलियन लाइब्रेरीवालों ही-सा मुस्तैद और सुजन पाया। मध्य एशियासे लाए हुए ग्रंथोंका बहुत-सा भाग यहीं है। अंगुल-भरकी टुकड़ियोंकी रक्षाके लिए भी काफ़ी रुपये खर्च किये गये हैं। फिर हम लोग संग्रहालयको देखने गये। भारतीय विभागमें बहुत-सी, भारतके पुरातत्त्व और कला-कौशल-संबंधी चीज़ें संगृहीत हैं।

अमरावती स्तूपकी बहुत-सी सुचित्रित संगमर्मरकी पट्टियाँ यहीं रखी हैं। मिश्र, असुर आदि देशोंकी भी बहुत-सी पुरानी चीज़ें यहाँ सुरक्षित हैं। बृटिश म्युज़ियमका पुस्तकालय दुनियाका सबसे बड़ा पुस्तकालय है। इसके वाचनालयमें हज़ारों आदमियों के बैठकर पढ़नेका इन्तज़ाम है। इतना होनेपर भी कोई हल्ला-गुल्ला नहीं। जिसको भी कुछ बात करनी होती है, वह धीरेसे करता है। पुस्तकको भी बहुत धीरेसे उठाता है। यहाँ मुझे लघुशंकाके लिये जानेकी ज़रूरत हुई। एक तरफ़ नीचेकी ओर बहुत-से पेशाबखाने पाँतीसे बने हुये थे, वहाँ उतना पर्देका प्रबन्ध न था, न बैठकर पेशाब करनेका ही। पासमें ही पाखाने-की कोठरियाँ थीं। वहाँ गया, एक छेदमें एक पेनी (=एक आना) डाला, फिर पुर्ज़ा घुमाने पर दर्वाज़ा खुल गया। पाखानोंकी सफ़ाईका क्या कहना। गंधका नाम नहीं। पानीकी जगह वहाँ पासमें काग़ज़का गोला लटकता रहता है। हमारे भारतीय कितने ही इसपर नाक-भौं सिकोड़ेंगे। उनको तो पसन्द यह आयेगा कि, लोटेका पानी ले जाया जाय; और आबदस्त लेते वक़्त बैठने और पैर रखनेकी सारी जगहको भिगा दिया जाय। हमारी सफ़ाई हो गयी न? 'अपनो घानी निकल गयी, अब तेलीका बैल चाहे मर न जाय।'

श्री श्रीनिवासाचार मद्रासकी तरफ़के एक पंडित-पुत्र ब्राह्मण हैं। लन्दन विश्वविद्यालयका एम्०-ए० करके इस साल पी-एच० डी० के लिए निबन्धग्रन्थ तैयार किया है। संस्कृत और इतिहास उनका विषय है। डाक्टर बर्नेट उनके प्रोफ़ेसर हैं; और, उन्हें बराबर बृटिश म्युज़ियम आना पड़ता है। उन्हींके साथ मुझे लौटना भी पड़ा। आते वक़्त तो हम मोटर बससे आये थे, अब सलाह ठहरी कि, भूगर्भ-रेलसे चलें। टोटेनहम्का स्टेशन बहुत दूर नहीं है। प्लेटफ़ार्ममें मामूली-सा एक फ्रेम का दर्वाज़ा लगा

था, जिसके ऊपर यु (u) अक्षर (= Under-ground—अन्तर्भूमि) लिखा हुआ था। दस क़दम नीचे उतरते, बिजलीसे जगमगाती कुछ समतल भूमि आ गयी। ज़रा और आगे एक किताबों और अखबारोंकी दूकान थी, दूसरी ओर टिकट मिलनेकी जगह थी। श्री श्रीनिवासजी जाकर दो टिकट लाये। अब एक तरफ़ सर्पगतिसे नीचे जाती, तथा पैर रखनेके स्थानोंको सीढ़ीकी भाँति बनाती-बिगाड़ती सीढ़ी नीचेकी ओर जा रही थी। यह सभी लोगोंके आफ़िसोंसे घर जानेका समय था; इसलिये सभी लोग शीघ्रतासे आगे बढ़ रहे थे। मुझे तो सीढ़ीमें पैर रखनेसे भय लगता था। कम-से-कम जल्दीमें पैर रखनेसे तो ज़रूर। यदि दाहिने पैरको चल, फ़र्शपर रखते ही, जल्दीसे, दूसरे पैरको भी उठाकर न रख दिया, तो एक पैर आगेको ओर चल देगा और दूसरा पैर ताकता रह जायगा। साथ ही हाथ रखनेका कठघरा भी तो चल रहा है! लन्दनमें रहते वक्त मैं हमेशा इन्हीं सीढ़ियोंके कारण भूगर्भ-रेलसे जानेमें परहेज़ किया करता था। उस दिनके बाद शायद एक ही बार और मैं उस रास्ते गया हूँगा। श्रीनिवासजी मुझे मेरे स्थानपर छोड़ कर चले गये।

९ अगस्तको एक श्यामवर्ण, स्थूलकाय युवक ग्यारह बजेके क़रीब हमारे पास आया। कहने लगा, १५, १६ वर्ष पूर्व, जब उतने ही वर्षोंका था, भागकर लंकासे लन्दन आ गया। तबसे मैं यहीं हूँ। मेरी पहली स्त्री मर गयी, दूसरी स्त्रीसे दो पुत्र हैं, जिनकी उम्र १०, १२ वर्षकी है। इतने दिन यहाँ रहते हो गये, कभी मुझे न अपने भिक्षु मिले, न अपना विहार देखा। आज डेली हेरल्ड पत्रमें पढ़ा कि, रिजेन्टस पार्कके पास हमारा चर्च है। आज सबेरेसे ही मैं घरसे निकला। मकानका नम्बर आदि नहीं मालूम था; इसलिये घंटोंके परिश्रमके बाद, यहाँ पहुँचा हूँ। आज मुझे बड़ा आनन्द हुआ। दूसरी बार मैं अपनी स्त्री

और बच्चोंको भी लाऊँगा। बोलते वक्त उस तरुणके नेत्रों और चेहरेसे उसके भीतरी भाव अच्छी तरह प्रकट हो रहे थे। और कुछ पूछनेके बाद आनन्दजी तो उसे मन्दिरमें ले गये, जहाँ पन्द्रह-सोलह वर्ष बाद, उसने अपने बचपनके परिचित शब्दों त्रिशरण और पंचशील, अपने लड़कपनके परिचित पीले वस्त्रवाले भिक्षुके मुखसे ग्रहण किया। वह अपनेको कृतकृत्य समझने लगा। यद्यपि उसका मकान वहाँसे १३, १४ मीलपर लन्दनके दूसरे छोरपर था, तो भी वह हर दूसरे-तीसरे रविवार-को, बहुधा अपनी स्त्री और बच्चोंको लेकर, भगवान्को चढ़ानेके लिये फूलोंका गुच्छा भी कितनी बार लिये आता था। स्त्री और लड़के सभी सुशील हैं। वह एक समूरके (Fur) कारखानेमें काम करता है। अपने काममें बड़ा होशियार है। २॥-३ पौंड सप्ताह वेतन मिलता है। लड़कोंको बड़े प्रेमसे पढ़ा रहा है। कह रहा था, एक बार लंका जानेका मन तो करता है; किन्तु लड़के-बच्चोंका साथ ले जानेमें बहुत खर्च पड़ेगा। अब तो हमारा चर्च लन्दनमें भी हो गया है, यहीं भगवान्के दर्शन कर अपने-को कृतार्थ समझेंगे। मुझे उसके परिवारकी स्मृति बहुत मधुर मालूम होती है। मुझे उसका परिवार, मेरा आराध्यदेव आदर्श श्रमजीवी परिवार मालूम होता था।

जिस समय वह सिंहल-तरुण आकर हमसे बात करने लगा, उससे पहलेसे ही एक भारतीय महाशय अजीज (हमीरपुर जिलेके निवासी) हमारे पास बैठे हुये थे। सिंहलतरुणको अपनी भाषा भी आधी भूल-सी गयी थी; और, उसकी अंग्रेजी लन्दनके श्रमजीवियोंकी बोली थी, जिसको समझनेमें हम लोगोंको कठिनाई हो रही थी। उसमें ग्रामरका कचूमर निकालकर रख दिया गया था, अथवा वह अपना अलग ही ग्रामर (व्याकरण) रखती थी। अजीज उसके मन्दिरकी ओर जानेके बाद नाक-भौं

चढ़ाकर कहने लगे, देखो तो भलेमानुसको इतने दिन आये हो गये, शुद्ध भाषा भी नहीं सीखी, किसी पासकी रात्रि-पाठशालामें, वर्ष-छः महीने जाता, तो भी सुधार हो गया होता। अजीजको मैं एक मस्ताना श्रमजीवी फ़िलासफ़र मानता हूँ। उसकी आज़ाद ख्याली और मस्तानी चालपर मैं मुग्ध हूँ। अजीजको भी इङ्गलैंड आये पन्द्रह, सोलह नहीं तो दस-बारह वर्ष जरूर हुए होंगे। वह कोई सुशिक्षित यहाँ नहीं आये थे; लेकिन यहाँ आकर मालूम होता है, उन्होंने कुछ समय तक रात्रि पाठशालाओंमें हाज़िरी जरूर दी; क्योंकि उनकी भाषा देहाती नहीं है। मालूम होता है, आरम्भमें उन्होंने कुछ काम भी किया होगा; किन्तु अब कितने ही वर्षोंमें यह खानाबदोश घुमक्कड़ हो गये हैं। इङ्गलैंड, स्काटलैंड, आयर्लैंड सब इनकी यजमानी हैं। रेल या मोटरबससे सफ़र नहीं करते, बस अपने पैरोंसे। बदनपर हैट, लम्बा कोट, कोट, पतलून, बूट जो कुछ था, वही उनकी सम्पत्ति है। और न कोई धन न दौलत। उन्हें देखकर मुझे रश्क आता था। कैसे काम चलता है, यह जिज्ञासा होते हुए मैंने भी नहीं पूछा। इस बेसरोसामानीमें भी वह आदमी दीन न था। मैंने इसके बाद इन घुमक्कड़ोंके (जिन्हें वहाँके लोग ट्रम्पर कहते हैं) बारेमें विशेष जाननेकी कोशिश की। पीछे मुझे अपने सभासदोंमें एक ही एक घुमक्कड़ मिल गये, जिन्होंने कुछ ही मास घुमक्कड़ी छोड़ी थी। यह बड़े ही संस्कृत और अध्ययनशील व्यक्ति हैं। घुमक्कड़ीके स्वतन्त्र जीवनने इन्हें आकृष्ट किया था। उनसे मुझे इङ्गलैंडके ग़रीबों और घुमक्कड़ोंके बारेमें बहुत कुछ मालूम हुआ।

उन्होंने बतलाया, घुमक्कड़ लोग दल बाँध कर नहीं घूमा करते। अकेले, और कभी दो-तीनकी संख्यामें रहते हैं। असली घुमक्कड़ हाथ से काम करनेको हराम समझता है। धूप, वर्षा

उसके लिये कुछ नहीं है। देहातमें किसान लोग दयालु होते हैं। एक घुमक्कड़ जाकर किसी घरके द्वारपर दस्तक लगाता है। आदमीके आनेपर कहता है—"क्या मेहरबानी करके एक प्याला चाय और एक टुकड़ा रोटी देंगे?" नहीं, बहुत कम ही जगह मिलती है। इस प्रकार रोटी, चाय ले—थैंक यु (धन्यवाद) कह, वह वहाँसे चल देता है। हाँ, शहरोंमें कुछ अधिक दिक़्क़त होती है, तो एक घुमक्कड़ दूसरे घुमक्कड़को अपने तजर्बेसे फ़ायदा पहुँचाता है। वह बतला देता है, लन्दनके अमुक-अमुक मुहल्ले धनियोंके हैं, वहाँ नहीं जाना चाहिये; क्योंकि वह लोग माँगनेपर कुत्ता छोड़ देते हैं या फ़ोन करके पुलिसको बुला देते हैं। इङ्गलैंडमें माँगना अपराध है। यदि फ़िलासफर अजीजको कोई ऐसी बात कहता, तो वह चार सुनाकर फिर कहता—जाड़ा, गर्मी सहनेवाले पैरों एक जगहसे दूसरी जगह घूमनेवाला, सूखी रोटी और एक प्याला चाय माँग कर खा लेनेपर तो अपराधी, और, यह जो बड़े-बड़े कारखानेवाले, दूकानवाले, बैंकवाले, जो बिना माँगे ही दाँव-पेंच लगाकर, मजदूरों और किसानोंकी गाढ़ी कमाईका आधा हड़प लेते हैं, यह तो भलेमानुस हैं न? खैर! घुमक्कड़ लोग मजदूरों और मध्यम श्रेणीके मुहल्लोंमें ही जाते हैं। उन लोगोंमें ही सहानुभूति और दया-भाव है। वहाँसे ज़रूर उन्हें कुछ मिल जाता है।

घुमक्कड़ोंके बारेमें उक्त सज्जनने मुझे कई पुस्तकें पढ़नेको दीं। उनमें डेविस (Davis)की एक महा घुमक्कड़की आत्म-कथा (Autobiography of a Super-Tramp) मुझे बड़ी ही पसन्द आई। यह घुमक्कड़ डेविस एक कवि और लेखक था। उसकी घुमक्कड़ीका क्षेत्र इङ्गलैंड ही नहीं, युक्त राष्ट्र अमेरिका भी था। अपने ग्रंथमें उसने घुमक्कड़ोंकी परस्पर

सहानुभूति और सहायता, नयी-नयी मुसीबतोंको झेलना और नये स्थानोंको देखना आदि बड़ी सजीव भाषामें लिखा है। उसने यह भी लिखा है कि, जाड़ेमें बचनेके लिये कैसे घुमक्कड़ लोग अमेरिकामें मजिस्ट्रेट, जेलरकी सहायतासे इच्छानुसार जाड़े-भरकी क़ैद ले लेते थे। जाड़ेमें जेलमें खाने, कपड़े, आग सभीका उनको आराम रहता था। हाँ सरकारसे मिलनेवाली रसदमें उन्हें मजिस्ट्रेट और जेलरको भी शामिल कर लेना पड़ता था। आमतौरसे जेलरके आदमीके दिए पैसेसे ही गहरी शराब उड़ेली जाती थी, फिर अंड-बंड बोलते, लड़खड़ाते बाज़ारसे निकलना पड़ता था। पुलिस पकड़कर चालान करती थी, फिर पहलेसे निश्चित, चार या पाँच मासके लिये जाड़ोंमें सरकारकी मेहमानी मिल जाती थी।

यूरोपमें हमारे यहाँके खानाबदोश, डोम आदि जातियोंकी भाँति एक खानाबदोश जाति है, जिसे इङ्गलैंडमें जिप्सी और यूरोपके बहुतसे मुल्कोंमें रोमनी कहते हैं। इस जातिकी भाषाकी परीक्षासे मालूम हुआ है कि, भारतसे ही पश्चिममें गए हैं। रोमनी शब्द भी डोमनी या डोम शब्दसे ही निकला है। इस जातिने भी सहस्राब्दी-पर्यन्त घुमक्कड़ीका जीवन बिताया, जैसा कि वह आज भी भारत और ईरान आदिमें करती है। लेकिन इङ्गलैंड आदि देशोंमें अब उन्होंने अपना वह जीवन छोड़ दिया है। मुझे उनके बारेमें जाननेकी बड़ी इच्छा थी। उक्त भूतपूर्व घुमक्कड़ महाशयसे ही पता लगा कि, अब इङ्गलैंडमें शुद्ध जिप्सी नहीं मिलते। उन्होंने सौ वर्ष पूर्व एक जिप्सी लेखक द्वारा लिखा लावेङ्ग्रू (Lavangro) मुझे पढ़नेको दी। वह भी मुझे बहुत पसन्द आयी। इन पुस्तकोंको पढ़ते हुए मुझे अपने घुमक्कड़ जीवनकी कुछ बातें याद आने लगती थीं। सच है, सारी दुनियामें फ़र्क चमड़े ही इतना गहरा है।

एक दिन रामचन्द्रजीसे लन्दनके ग़रीबोंके विषयमें बात होने लगी। मैंने उनसे पूछा, वह कहाँ रहते हैं, क्या उनमें सबको सरकारी खज़ानेसे मुहताजी मिलती है? उन्होंने बतलाया—मुहताजी तो उन लोगोंको मिलती है, जिन्होंने मज़दूरी करते वक्त हर हफ्ता कुछ पैसे बेकारी-बीमा-कोशमें जमा किया है। और यह हरएकको जमा करना ही पड़ता है। बेकार होनेपर भी हमेशा थोड़ी ही मुहताजी मिलती रहेगी। पहले कुछ ज्यादा दिनों तक देते थे; किन्तु जबसे नयी अनुदार सरकार हुई है, तबसे सहायताका समय ७, ८ सप्ताह ही रख दिया है। मैंने पूछा—फिर वह लोग क्या करते हैं? बतलाया—भीख माँगेंगे या घुमक्कड़ी करेंगे। मैंने पूछा—भीख माँगनेपर पुलिस नहीं पकड़कर ले जायेगी? बतलाया—जो खुले भीख माँगते हैं, वह पुलिसकी आँख बचाकर गलियोंमें जाकर माँगते हैं। दूसरे, देखा नहीं, आदमी सड़कोंपर दियासलाई लिए खड़े रहते हैं; या पगडंडी या समुद्रतटके बालूपर खड़ियासे चित्र बनाया करते हैं; अथवा लड़ाईके मेडलोंको लगाए, अकेले या दो-तीन आदमी मिलकर सड़कपर बाजा बजाते हैं; या ठेलेकी गाड़ीपर फ़ोनोग्राफ़ ही लेकर बजाते हैं। इन सब कामोंका अर्थ लोग भीख माँगना समझते हैं; और, पैसा दे देते हैं। स्त्रियाँ फूल बेचनेके बहाने भीख माँगती हैं। मैंने पूछा—यह लोग रहते कहाँ हैं? बतलाया—चलिये इस वक्त (दो बजे दिनको) रिजेन्ट्स् पार्क, हाइड पार्क आदि उद्यानोंमें पचासों आदमियोंको घासपर सोते दिखा दूँ। नौ बजे शामको सारे बाग़ बन्द हो जाते हैं, उस वक्त यह लोग सो नहीं सकते; इसलिये इसी वक्त सो लेते हैं। रातको सड़ककी पगडंडीपर इधर-से-उधर घूमते रहते हैं, या प्राइमरोज़ जैसी एकाध खुली जगहोंमें पड़े रहते हैं। लन्दनसे बाहर जानेका मतलब, एक दिनका रास्ता नापना। (नगर-उपनगर मिलाकर

७० लाखसे ऊपर आदमी लन्दनमें बसते हैं)। मैंने पूछा—मुहताजखानोंमें (Work house) यह क्यों नहीं चले जाते? बोले—वहाँ खाना रद्दी मिलता है। और यदि एक बार आदमी उसके भीतर चला गया, तो फिर उसे बाहर काम ढूँढ़नेका मौक़ा नहीं रहेगा; वह हमेशाके लिये वहीं क़ैद-सा हो जायगा। कितने लोग मुहताजोंमें अपना नाम लिखाना लज्जाकी बात भी समझते हैं। यदि इङ्गलैंडके सभी बेकार लोग मुहताजखानोंमें जाने लगें तो जगह कहाँ रहेगी? यह भी पता लगा कि, लन्दनमें बेघर-वालोंके सोनेके कुछ घर हैं, जिनमें चारपाई, ओढ़ना और बिछौना मिलता है। लेकिन वहाँ एक रातके सोनेका १ शिलिङ् देना पड़ता है। जहाँ एक रूमालकी धुलाई ३ पेनी (=३ आना), एक चद्दरकी धुलाई १ शिलिङ् (सवा दस आने और एक पाई) हो, वहाँ दरिद्रका जीवन कितना संकटमय होगा? पाखाना भी नहीं जा सकते, जबकि, दर्वाजेमें डालनेके लिये १ पेनी पास न हो।

२४ अगस्तको विलियम मुझे बृटिश म्युज़ियम पहुँचा आये। हमको नये अन्वेषण सम्बन्धी मासिकपत्रोंको पढ़ना था। जिस वक्त, हम पढ़ रहे थे, तो वहीं एक मेज़पर एक घनश्याम-काय वृद्ध, ठिगनी मूर्त्ति, नीले रंगका साफ़ा लगाके बैठी थी। हमारे पीले कपड़ेको देखकर उन्होंने पास आ प्रणाम करके, मेरे बारेमें पूछा; और, पूछनेपर अपना परिचय दिया—मैं कर्नाटकका रहने-वाला हूँ, यहाँ २५ वर्षसे रहता हूँ। मेरे बाल-बच्चे सब यहीं हैं। यह भी मालूम हुआ कि आनन्द राय चिन्नप्पा (यही उनका नाम था, हिन्दी, मराठी, कनारी, तेलगू, तमिल, मलयालम् आदि भारतीय भाषाओंके अतिरिक्त इंग्लिश, फ्रैंच आदि यूरोपीय भाषामें तथा अरबी भी जानते हैं, कुछ भाषाओंके परीक्षक भी होते हैं। यहाँ पढ़ानेका काम करते हैं और जाड़ोंमें यूरोपमें

जाकर कुछ व्याख्यान दे आते हैं, इस तरह जीवन-यापन करते हैं। जब मैं निवासस्थानपर लौटनेको बाहर निकला और विलियम्की प्रतीक्षा कर रहा था, तो उस समय आनन्दरायजी आ गये। उन्होंने कहा, चलिये मैं पहुँचा देता हूँ। अब हमारी बात, सारे रास्ते भर, हिन्दीमें होती रही। उन्होंने अपने साफ़ेके बारेमें अभिमानसे कहा, "मैं कभी हैट नहीं लगाता, बराबर साफ़ा बाँधता हूँ, चाहे लन्दनमें हों चाहे यूरोपमें। मेरे पीले वस्त्रोंको देखकर उनका अपना भाव जाग उठा था। उन्होंने कहा—यदि हम लोग हैट लगाते हैं, तो यहाँवाले निग्गर (हब्शी) कहने लगते हैं।

हम लोग कुछ रास्ता भूल-से गये। एक महिलासे उन्होंने जगहका नाम पूछा। उसके जवाबके साथ ही बोल उठे, ओह! आप स्काटलैंडके अमुक स्थानकी हैं? महिलाने कहा—"हाँ, आप कैसे जानते हैं?"

"क्यों, मेरी स्त्री वहींकी हैं।" क्या आप एक दिन मेरे घर चाय पीनेके लिये नहीं आ सकती हैं?"

चाय पीनेका समय भी नियत हो गया। इससे मुझे मालूम हुआ कि, आनन्दरायजी कितने मिलनसार हैं। मेरे स्थानपर छोड़नेके बाद उन्होंने कहा—आजकल मेरा लड़का और पाँचों लड़कियाँ घरपर आये हुए हैं। कुछ दिनोंमें वह अपने-अपने कामपर चले जायँगे। मैं भी कुछ दिनोंमें व्याख्यानके लिये यूरोप चला जाऊँगा। आप एक दिन मेरे यहाँ चाय पीयें तो अच्छा। मैंने मंजूर किया।

२८ अगस्तको एलिस् महाशय ३ बजे मोटरपर मुझे श्री आनन्दरायके मकानपर ले गये। ऊपर एक या दो कमरे थे, सो तो मैं नहीं जानता; किन्तु नीचे एक छोटा-सा बैठकका कमरा

था। एक खिड़की, सो भी बन्द। आनन्दरायने अपनी पाँचों लड़कियों और पुत्रसे परिचय कराया। मालूम हुआ, चार लड़कियाँ अब अध्यापिकाएँ हैं; और, छोटी लड़की पढ़ रही है। पुत्र कालेजमें पढ़ रहा था। लन्दनमें इतने बड़े परिवारका चलाना मुश्किल है; इसलिये चार लड़कियोंको काम करना पड़ता है। वहाँ फ्रांसके एक विश्वविद्यालयमें अंग्रेजीके प्रोफ़ेसर तथा एक कर्नाटकीय सज्जनसे भी परिचय हुआ। लड़के-लड़कियाँ बुद्धधर्मके सम्बन्धमें कितने ही प्रश्न करते रहे। घंटा-भर रहकर मैं वहाँसे लौट आया।

ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीसे पता मालूम हुआ था कि, श्री चम्पतराय जैन (बैरिस्टर) अब लन्दनमें ही रहकर जैन धर्मके प्रचारका काम करते हैं। मेरी और आनन्दजी दोनोंकी ही, उनसे मिलनेकी बड़ी इच्छा थी। उधर ब्रह्मचारीजीने चम्पतरायजीको पत्र भी लिख दिया था। फ़ोनसे बात हुई, एक दिन वह हमारे स्थानपर आये। मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। २६ अगस्तको हम लोग गोल्डर्सग्रीनके क्लीव-लैंड-गार्डन मुहल्लेमें, उनके पास पहुँचे। यह नयी बस्ती है—स्वच्छता, फूल-फुलवारीके अतिरिक्त यह स्थान शान्त भी बहुत है। चम्पतरायजी वृद्ध और अनुभवी पुरुष हैं। जैनधर्मपर उन्होंने अंग्रेज़ीमें कई पुस्तकें लिखी हैं। बुढ़ापेमें कहाँ लोग हाथ-पैर डाल देते हैं; और, कहाँ—इन्होंने अपनी बैरिस्टरी छोड़, विदेशमें रह, धर्म-प्रचारका काम उठाया है। जैनधर्म यूरोपीय लोगोंके लिये और भी कठिन है, इसमें सन्देह नहीं; तो भी धर्म व्यक्तिगत चीज़ है। यूरोपमें भी ऐसे पुरुष मिल सकते हैं, जिनके चित्तको भगवान महावीरकी शिक्षासे शान्ति मिल सकती है। कितनी ही बार हमें श्री चम्पतरायजीसे वार्त्तालापका मौक़ा मिलता रहा। और हमारा बन्धुत्व बढ़ता गया। वस्तुतः विचार-भेद होना तो चेतन होनेका धर्म है।

आपके ७५ विचार यदि एक होंगे, तो २५ में फ़र्क़ ज़रूर होगा। प्रेम और सहानुभूतिकी नींव विचार-भेदके ध्वंसपर नहीं डालनी चाहिये। विचार-भेदका अन्तिम अन्त तो चेतनाके विनाशपर ही हो सकता है। फिर हम तो एक संस्कृति, एक इतिहास, एक जातिकी सन्तान थे। विचारोंमें भी बहुत-सी समानतायें थीं। २२ अक्तूबरको हम दोनोंका श्री चम्पतरायजीके यहाँ निमन्त्रण था। बारह बजेसे पूर्व ही हम वहाँ पहुँच गये। आनन्दजी तो भोजनमें चम्पतरायजीके स्वर्गीय हो ठहरे। हमें भी उस फलाहारमें शामिल होना पड़ा। चम्पतरायजीकी जन्म-भूमि दिल्ली है। वहाँ भोजनमें दिल्लीका आचार तथा कुछ और चीज़ें थीं। हम तीनों भारतीयोंके अतिरिक्त वहाँ चार देवियाँ भी थीं। जिनमें चम्पतरायजीकी गृह-स्वामिनी जर्मन-महिला थीं। एक बड़ी ही समझदार फ्रेंच कुमारी और उसकी बहिन थीं; और, यदि मैं भूलता नहीं, तो एक और अंग्रेज़ महिला थीं। भोजन आरम्भ हुआ और उधर बात शुरू हुई! आनन्दजी के भोजनमें शायद आमका आचार या कोई ऐसी चीज़ चाक़ूसे काटनेकी थी। ज़िन्दगी-भर घास खानेवाले छुरी-काँटेका प्रयोग कैसे जानें! जब वह काट नहीं सकते थे, तो पासकी देवीने बड़े ही मधुर शब्दोंमें कहा—I feel motherly (मैं इनके प्रति मातृत्व अनुभव कर रही हूँ)। यह तीन शब्द जो उस समय बड़े ही अकृत्रिम ढंगसे निकले थे, हमारे हृदयके अन्तस्तल तक पहुँच गये। चम्पतरायजीने कहा—हमारी बातें तो यह बराबर सुनती रहती हैं। आज आपकी बातें इन्हें सुनना चाहिये। यह युवती बड़ी समझदार ही न थीं; बल्कि वह साम्यवादी विचारकी थीं। उसने कई प्रश्न धर्मोंके विरोधमें किये। जब उसने कहा—ईश्वर माननेका मतलब तो अपनी जवाबदेहीको दूसरेके भरोसे पर छोड़ देना है, अब तक चली आयी रूढ़ियोंको मज़बूत करना

है। जब उसे उत्तर मिला कि, बौद्ध तो ईश्वरको मानते ही नहीं, वह तो मनुष्यको व्यक्तिगत या समष्टिगत रूपसे. अपने भविष्य-का मालिक मानते हैं। आत्माके बारेमें मैंने कहा—यह अकस्मात् तुरन्त पैदा हुई चीज नहीं; बल्कि करोड़ों वर्षोंके विकासका परिणाम है! और इसका विकास इसी शरीरमें रुक नहीं जायगा, आगे भी चलता रहेगा। यह नित्य एक रस चीज नहीं; बल्कि क्षण-क्षण कर्मानुसार नयी होनेवाली चीज है। अंग्रेजीमें यह being नहीं है becoming है। उसने मार्क्सके अनुया-यीके तौरपर बहुतसे प्रश्न पूछे; और, उसे सभी बातोंका सन्तोषप्रद उत्तर मिला। वस्तुतः धार्मिक नेताओंमें यदि मार्क्सका अच्छी तरह कोई साथ दे सकता है, तो बौद्ध ही दे सकते हैं।

देर तक बात चीत करके हम लोग लौट आये।

७

लन्दनमें साढ़े तीन मास (ग)

लन्दनके ग़रीबोंके मुहल्लेको देखनेकी बड़ी इच्छा थी। ३० अगस्तको हम लोग लन्दनके पूर्व-अन्तको (East end) देखने गये। लन्दनका पश्चिम-अन्त (West end) धनियोंका और फ़ैशनेबुल स्त्री-पुरुषोंका मुहल्ला है और पूर्व-अन्त ग़रीबों-का। द्वितीय राउण्ड टेबुल कान्फ्रेंसके समय जाकर महात्मा गांधी यहीं कुमारी लिस्टरके किङ्सले हालमें ठहरे थे। हम सीधे वहाँ न जाकर, पहले ट्वाइन बी हाल (Toynbee Hall) देखने गये। यहाँपर समाज-सेवाका काम होता है और इसके लिए विश्वविद्यालयोंके छात्र और छात्राएँ भी सेवाके कामकी क्रियात्मक शिक्षाके लिए यहाँ आती हैं। शिक्षा, संगीत, चिकित्सा आदि किन-किन तरीक़ोंसे ग़रीबोंकी सेवा की जा सकती है, इसकी यहाँ क्रियात्मक शिक्षा मिलती है।

वहाँसे फिर हम किङ्सले हालमें पहुँचे। मकान, द्वार, जङ्गले सभी यहाँ छोटे-छोटे हैं। स्त्री-पुरुषोंके पुराने, मैले वस्त्रोंसे भी—आपको पता लग जायगा कि, हम किस मुहल्लेमें आये हैं। हमें मोटरसे उतरते ही आस-पासके लड़कोंने 'गंती, गंती' कहना शुरू किया। कुमारी लिस्टर उस वक्त वहाँ न थी; किन्तु स्थानापन्नने हमें सभी चीजोंको अच्छी तरह दिखलाया। एक

बड़ा सभा-भवन है। द्वारके बगलमें ही एक छोटी-सी कोठरी है, जिसमें नियत समयपर मौन-चिन्तन किया जाता है। हम हालमें पहुँचे। उसे मजदूर मंचके एक नाटक खेलनेके लिए तैयार किया गया था। आखिर ग़रीबोंको भी दिल बहलानेकी चीज़ें चाहिए। यह नहीं कि, ग़रीबोंके सुधारके लिये, बस अब योगाभ्यासकी शिक्षा देने लग जायँ।

कुमारी लिस्टरने पास-पड़ोसके ग़रीबोंके लिए जहाँ विद्योन्नतिके लिए अध्यापन और पुस्तकालयका प्रबन्ध किया है, वहाँ उनके दिल बहलानेके लिए नाच, गानाका भी (नाटकका भी समय-समयपर) प्रबन्ध रखा है। पार्कका और उद्यानमें लड़कोंके खेलनेके लिए झूला, फिसलुआ, तथा दूसरे खेलोंका इन्तज़ाम है। एक मकानमें छोटे बच्चोंको नहलाने-धुलाने तथा खिलानेका प्रबन्ध है। ग़रीबोंके घरमें नहानेका पानी भी नहीं तैयार हो सकता, उनके लड़के यहाँ नहलाये जाते हैं। उन्हें दूध और खानेकी दूसरी चीज़ें दी जाती हैं। चूँकि तीन-चार वर्षके लड़कोंको अक्षरका ज्ञान नहीं होता; इसलिए चीज़ोंको पहचाननेके लिए, उनकी कुर्सियोंपर कुत्ते, बिल्ली, मुर्ग़ी आदिकी तस्वीरें बनी रहती हैं। लड़कोंका यह मकान प्रधानशालासे थोड़ा हटकर है। शालासे ऊपर जाकर हम उस छोटी कोठरीमें पहुँचे, जिसमें महात्मा गांधी रहे थे। वहाँ अब भी चर्खा और उनका सूत मौजूद था। कुछ फ़ोटो भी उनके टँगे थे।

१४ सितम्बरको अन्तर्राष्ट्रीय धर्मविद्या आन्दोलनकी ओरसे सभ धीमोंके व्याख्याताओंका व्हाइट फ़ील्ड गिर्जामें व्याख्यान था "भय को कैसे जीता जाय।" आनन्दजी भी उसमें बोलनेवाले थे। कर्नल सर यङ्ग हसबण्ड (१६०४ ई०में तिब्बतपर चढ़ाई करनेवाली सेनाके सेनापति) आजकी सभाके सभापति

थे। मैं भी साथ गया। पहला व्याख्यान आनन्दजीका ही था। यद्यपि मिशनसे बाहर इङ्गलैंडमें उनका यह पहला ही व्याख्यान था, तो भी अच्छी तरह बोले। इसी व्याख्यानमें डाक्टर हरप्रसाद शास्त्रीसे मुलाक़ात करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। युद्धके वक्त् शायद मैंने 'सरस्वती'में जापानमें उनके सांस्कृतिक कामके बारेमें पढ़ा था। आजकल कितने ही वर्षोंसे आप लन्दनमें ही रहते हैं। आपके साथ आपकी जापानी धर्मपत्नी भी रहती हैं। शास्त्रीजीका जन्म बरेलीका है। बहुत दिनों तक काशीमें रहकर आपने संस्कृत पढ़ी। बरेलीके पंडित खुन्नीलाल शास्त्री, जो इधर कई शताब्दियोंके बाद मध्य देशके प्रथम ब्राह्मण संस्कृत विद्वान बौद्धधर्ममें दीक्षित हुए थे—का आपपर बड़ा प्रभाव पड़ा था। वैसे तो १९१० ई०में मुझे भी शास्त्रीजीके दर्शनका, बरेलीमें, सौभाग्य प्राप्त हुआ था; किन्तु उस समय मुझे इतना ज्ञान न था। मैंने शास्त्रीजीसे कहा आपको कभी-कभी हिन्दीके पत्रोंमें कुछ लिखना चाहिये, ताकि आपके बारेमें लोगोंको कुछ पता तो लगता रहे। कहा—१५-१६ वर्षसे अभ्यास छूट गया है। मैंने कहा—एक बार जन्म-भूमिका दर्शन करना चाहिए। कहा—इच्छा तो है। बड़े ही भावुक और प्रेमी जीव हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती शास्त्री स्वयं कलामें बड़ी ही निपुण हैं। एक जापानी सम्भ्रान्त बौद्ध कुलकी लड़की हैं। पति-पत्नी दोनोंके हृदय और जीभसे हमेशा मधु टपकती रहती है। शास्त्रीजीका भी वहाँ व्याख्यान हुआ था। आप बड़े ही अच्छे वक्ता हैं; विशेषकर आप भारतीय दर्शनपर व्याख्यान देते रहते हैं। शास्त्रीजी अब प्रौढ़ावस्थासे ऊपरकी ओर बढ़ रहे हैं। बीसियों वर्षोंसे आप जापान, चीन और यूरोपमें रह रहे हैं। इस वक्त् तो आपके परिपक्व ज्ञानसे देश-वासियोंको कितना लाभ होता, यदि आप जन्मभूमिमें आकर किसी कालेजमें

अध्यापनका काम करते या दूसरी तरह सेवा करते। आपको कोई सन्तान नहीं है।

१६ सितम्बरको लन्दनसे ५ मील दूर डल्-विच शहरमें एक अंग्रेज़ दम्पतीके घर भोजन का निमन्त्रण था। शहर वस्तुतः वहाँ तक लगा चला गया है। यह दम्पत्ति बड़े ही सुसंस्कृत हैं। दोनों ही लेखक हैं। और कोंत के (Conte) मतके पक्षपाती हैं। कोंतका मत बुद्धकी शिक्षासे बहुत मिलता है। इनकी लड़की लंकाके आनन्द कालेजके प्रिंसिपल श्री कुलरानको ब्याही है। और स्वयं एक बौद्ध-कन्या कालेजके प्रिंसिपल हैं। पतिको दर्शनका बड़ा शौक़ है। पत्नीको काव्य और कलामें बहुत अनुराग है। एक बड़ा अच्छा पुस्तकोंका संग्रह है। भारतके प्रति दोनोंका प्रेम है। तीन बजे के क़रीब हमें डलविच् चित्रशाला दिखानेको ले गये। इसकी स्थापना तीन सौ वर्ष पूर्व हुई थी। लन्दनकी राष्ट्रीय चित्रशालासे भी यह पुरानी है। प्रायः एक सहस्र सुन्दर तैलचित्र, इसमें संगृहीत हैं। बड़ा सुन्दर संग्रह है। धार्मिक और ऐतिहासिक दोनों ही प्रकारके भावपूर्ण चित्र हैं।

सितम्बरके अन्तसे जाड़ेका मौसिम आया मालूम होने लगा। हमारे आनन्दजी कभी-कभी अब कमरेकी गैसकी अँगीठीका व्यवहार करने लगे।

लन्दनमें सालके खास-खास महीनेमें घड़ीको असली टाइमसे घटा-बढ़ा दिया जाता है। दो अक्तूबरको अब तक चले आते तीन बजेको दो बजे कर दिया गया; और, अब समय ग्रीनविच्के अनुसार हो गया। इस एक घंटाके इधर-उधरसे रोशनीके भेदमें राष्ट्रको कई लाखका लाभ होता है।

लन्दनमें बृटिश म्युज़ियमके अतिरिक्त एक और भी विशाल म्युज़ियम (संग्रहालय) है, जिसे केन्सिङ्टन म्युज़ियम कहते

हैं। ५ अक्तूबरको हम दूसरी बार इस म्युज़ियमको देखने गये। यहाँके क्युरेटर केमूवल् महाशय स्नेह और सहानुभूतिकी साकार मूर्त्ति हैं। हमें मालूम था कि, भगवान बुद्धके दो प्रधान शिष्य उपतिष्य सारिपुत्र (ब्राह्मण, जन्म नालन्दा, ज़ि० पटना), कोलित मोग्गलानकी (ब्राह्मण, जन्म राजगृहके पास, ज़ि० पटना) की साँचीके प्रसिद्ध स्तूपमें मिली अस्थियाँ यहाँ रखी हैं। हमारे जानेपर वह स्वयं अपने संग्रहको दिखलानेके लिए ले गये। ऊपर एक काँचके बक्समें इक्कीस सौ वर्ष पुरानी वह पत्थरकी डिबिया रखी थी। उन्होंने बक्सको खोलकर पहले आयुष्मान् सारिपुत्रकी अस्थिको—जो कि एक संगखारेकी शकलके समरी पत्थरकी डिबियामें रखी थी (इस डिबियापर इक्कीस सौ वर्ष पुराने अक्षरोंमें 'सारिपुतसे'="सारिपुत्र" लिखा हुआ है)—मेरे हाथमें दिया। उस समय भगवान्के वह वचन मेरे कानोंमें गूँजने लगे, जो उन्होंने उस महापुरुषके निर्वाणपर, (हाजीपुर ज़ि० मुज़फ्फ़रपुर, पुरान उक्काचल) के पास गंगाकी रेतामें बैठे भिक्षुओंको कहा था—'भिक्षुओं! मुझे यह (तुम्हारी) परिषद् सूनी-सी जान पड़ती है। सारिपुत्र-मौद्गल्यायनके परिनिर्वाणके पूर्व यह सूची नहीं मालूम होती थी। जिस दिशामें सारिपुत्र, मौद्गल्यायन विचरते थे, उस दिशाको (मेरी) अपेक्षा नहीं होती थी।' "भिक्षुओं! महान वृक्ष (का तना) बड़ा हो और उसकी सारमयी महती शाखायें टूट जायँ। इसी प्रकार भिक्षुओं मेरे लिये सारिपुत्र-मौद्गल्यायनका परिनिर्वाण है।" यह शब्द तो उसी समय और उनके गुरुके मुखसे निकले थे। तबसे अब तक तो ढाई हज़ार वर्ष बीत गये; और संसारमें बस उतनी ही अस्थियाँ उन महापुरुषोंकी मौजूद हैं। इन बातोंके साथ जब छः हज़ार मीलपर मैं अपनेको अपनी ही जातिके उन महापुरुषोंकी अस्थियोंके सामने देखता था—मेरा अन्तर-बाहर एक

विचित्र भाव-समुद्रमें आप्लावित हो रहा था। श्री केम्बल् भी वृद्ध हैं और बड़े ही सहृदय हैं। उन्हें यह भली प्रकार मालूम होता था कि, हमारे भीतर क्या हो रहा है। सारिपुत्र, मौद्गल्यायनके बाद उन्होंने उन मज्झिम स्थविरकी अस्थिको हमारे हाथपर रखा, जिन्हें अशोकराजके तत्त्वावधानमें एकत्रित पटनाकी परिषद्ने हिमालयमें धर्म-प्रचारक भेजा था। पहले सिंहलमें प्राप्त भारतीय इतिहासकी सामग्री उतनी प्रामाणिक नहीं समझी जाती थी; किन्तु साँची आदिमें मिली इन सामग्रियोंने उनकी प्रामाणिकताको बहुत बढ़ा दिया है। वहाँके बाद केम्बेल महाशयके सहकारी—जो कि तिब्बती भाषा भी जानते हैं; और, भगवान बुद्धके बड़े अनुरागी हैं—ने अपने तिब्बतीय चित्र-पटोंके संग्रहको दिखलाया। उन्हें मेरे तिब्बतीय चित्र-संग्रहोंका पता था। १० सितम्बरके 'डेली स्केच' तथा लन्दनके कितने ही दूसरे दैनिक पत्रोंमें फ़ोटोके साथ उन चित्रोंके बारेमें छप चुका था। एक-एक चित्रपट तथा दूसरी तिब्बती सामग्रीको, इन्होंने दिखलाया। लौटकर श्री केम्बल कार्यालयमें गये, तो वह हमें छोड़नेके लिये आये। उस समय मुझे एक विचित्र अनुभव हुआ। यहाँ एक भारत-सरकारमें फ़ौज या राजनीति विभागमें किसी ऊँचे पदपर प्रतिष्ठित एक अंग्रेज सज्जन भी थे। केम्बेल महाशयको हमारे प्रति सन्मान देख, उन्हें भी मजबूरन हाथ मिलानेके लिये हाथ बढ़ाना पड़ा; किन्तु हाथकी गति और चेहरेके आकार-प्रकारसे मालूम होता था कि, यह सब अनिच्छायुक्त था। वस्तुतः भारतमें आकर लौटे अधिकांश अंग्रेजों और इङ्गलैंडके अंग्रेजोंमें बड़ा फ़र्क़ है। मुझे पेरिसके एक सज्जनकी बात याद है—वह भारतमें आकर १८ माससे ज्यादा रहे थे! भारतमें रहते वक्त, वह सदा भारतीयोंके साथ रहते थे। इस प्रकार सरकारी कर्मचारियोंको उनपर सन्देह होने

लगा। उन्होंने अपना चर उनके पीछे लगा दिया। वह बतला रहे थे, मुझे यह मालूम हो जाता था। मद्रास पहुँचने पर, जब मैंने खुफ़िया पुलिसके एक अफ़सरको अपने टोहमें आते देखा, तो मैंने उनसे कहा—मुझे मालूम है—तुम गुप्तचर हो; और, मेरे पीछे लगाये गये हो। फिर यह क्या ज़रूरत कि, हम लोग दूना खर्च करें। आओ ताँगा, टेक्सी आदि करनेमें हम दोनों शामिल हो जायँ। किराया इस प्रकार आधा ही आधा पड़ेगा। इस प्रकार वह गुप्तचर उनके साथ एक मददगार साथीकी तरह रहा। उसकी रिपोर्टों तक लिखनेमें हमारे दोस्त मदद कर दिया करते थे। ख़ैर, मेरा मुख्य मतलब तो उनकी इस बातसे था। किसी प्रान्तके एक बड़े अफ़सरने एकबार उनसे पूछा—आप क्यों हिन्दुस्तानियोंमें ही रहते हैं; और, अंग्रेज़ोंसे नहीं मिलते? उन्होंने उत्तर दिया—मैं यहाँ हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियोंको देखने आया हूँ; इसलिये मुझे ऐसा ही करना चाहिये। मुझे अंग्रेज़ जातिको देखना होगा, तो मैं इङ्गलैंड जाऊँगा; और, वहाँ मेरे बहुत-से दोस्त भी हैं। अंग्रेज़ोंके गुणोंको जाननेके लिये हिन्दुस्तानमें आकर मैं भूल करूँगा। मेरे मित्रकी राय थी और उससे मैं भी पूर्णतया सहमत हूँ कि, भारतमें आये अंग्रेज़ोंसे अंग्रेज़ जातिकी तुलना करना भारी अन्याय होगा। लेकिन इसका यह मतलब न समझिये कि, भारतमें आये सभी अंग्रेज़ उत्तम भावोंसे बिलकुल शून्य होते हैं। आइये यहाँ मैं अपना ही दो अनुभव आपको सुनाऊँ।

(१) मैं अपने तिब्बतीय चित्रोंके संग्रहसे चालीस चित्र* अपने साथ यूरोप ले गया था। लन्दन और पेरिसमें उनकी प्रदर्शनी हुई; और, कलाविदोंने उनकी खूब तारीफ़ की। लन्दनमें

*अब यह चित्र पटना म्युज़ियममें है।

चित्रोंकी प्रदर्शनीकी बातको पढ़कर, चित्रोंको देखनेके लिये एक सज्जन सपत्नीक आये। वह तिब्बतीय भाषा जानते थे और हिन्दुस्तानी भी। जिस प्रकार वह अहंकार-शून्य हो, सप्रेम हो बातें कर रहे थे, उससे मैंने निश्चय समझ लिया कि, वह पादरी होंगे। भारत-सरकारके किसी भी फौजी या मुल्की अफसरसे अपनी पूर्व धारणाके अनुसार, मैं ऐसी आशा नहीं रखता था। हमारी कई बार आपसमें बातचीत होती रही; और, मैं अपनी पूर्व धारणाको बनाये हुए था। यद्यपि पादरियोंकी भाँति, मजहबी विचार-संकीर्णता न पा, मुझे कभी सन्देह भी होने लगता था। आखिरको मुझे उन्होंने अपना एक बड़ा-सा लेख दिया, जो उन्होंने (स्पिती काँगडा)के एक ग्यारहवीं शताब्दीके मन्दिरके सम्बन्धमें लिखा था; और, जो भारतके पुरातत्त्व-विभाग द्वारा प्रकाशित हुआ था। उसमें मैंने लेखकका नाम देखा— लेखक श्री H. ली शटलवर्थ एम० ए०, रिटायर्ड आई० सी० एस्० (आजकल आप लन्दन विश्वविद्यालयमें भोट भाषाके अध्यापक हैं)। यह देखकर मुझे अपने पर बड़ा अफसोस हुआ। सचमुच बुद्धने ठीक कहा है—मनुष्यको विभाज्यवादी (अच्छे बुरेके विभाग करके निर्णय करनेवाला) होना चाहिये। पतिमें ही नहीं, श्रीमती शटलवर्थमें भी मैंने वही गुण देखे, जो कि आर्य-ललनामें होने चाहिये। एक दिन मैं उनके यहाँ चाय पीने गया था। उस दिन उन्होंने अपने काँगड़ा और लदाखके संग्रहको दिखलाया। उन सैकड़ों चित्रोंको भी दिखलाया, जिन्हें उन्होंने भारतमें उतारा था। कुल्लूमें रहते उन्हें, एक ८ इंच लम्बी, हाथी दाँतपर अवलोकितेश्वरकी मूर्त्ति मिली थी। उसे भी उन्होंने मुझे दिखलाया। बारहवीं-तेरहवीं शताब्दीकी कलाका वह अति सुन्दर नमूना है। अबकी बार लदाख आनेपर उनके परिचित आदमियोंसे यह भी मालूम हुआ कि, जब शटलवर्थ

महाशय कांगड़ामें असिस्टेंट कमिश्नर थे, तो दौरामें जाते व ., दवाइयाँ अपने साथ रखते थे; और, रोगियोंको बाँटते चलते थे। इसी जीवनको बोधिसत्त्व जीवन कहा गया है। श्री शटलवर्थ वह व्यक्ति हैं, जिनसे परिचय प्राप्त कर, मनुष्यको मेरी तरह, उनकी स्मृतिको एक बहुमूल्य कोषकी भाँति हृदयमें सुरक्षित रखना होगा।

(२) एक और देवी मेरे चित्रोंकी प्रदर्शनी देखने आयी थीं। उन्होंने मुझसे कहा :—"मेरे पास भी तिब्बतीय चित्रों और अन्य चीज़ोंका संग्रह है।" मैंने जब संग्रहके मूलके बारेमें पूछा, तो मालूम हुआ कि, वह लेंडन महाशयका संग्रह है। लार्ड कर्ज़नके द्वारा तिब्बतपर जो मुहिम् भेजी गयी थी, उसमें लेंडन शायद टाइम्सके संवाददाताके रूपमें गये थे; और, पीछे ल्हासापर एक सुन्दर पुस्तक लिखी। नेपालपर भी नवीनतम और सर्वोत्तम पुस्तक उन्हींकी दो भागोंमें छपी है। चायके लिये कहा गया तो मैंने तुरन्त अपनी स्वीकृति दे दी। देवीने अपने साथी केप्टन्की ओर इशारा करके कहा कि, वह मोटर लेकर आ जायँगे। उन्होंने यह भी बतलाया कि, केप्टन् एक साल भारतमें भी फ़ौजमें रह चुके हैं। भारतमें रहनेकी बात सुनते ही मैं चोकन्ना हो गया।

५ नवम्बरको केप्टन् महाशय मोटर लेकर आ गये। मैं जाकर उनकी बग़लमें बैठ गया। जाड़ेका दिन था; उन्होंने कम्बलका आधा हिस्सा मेरे पैरोंपर भी डाल दिया। मैं गाल फुलाये चुपचाप चला। मैं समझता था, यह भारतसे लौटा अंग्रेज़ सभी भारतीयोंको कुत्तोंकी तरह देखनेवाला होगा। मेरी मुख-मुद्रा कितनी देर तक इसी प्रकार बनी रही। कुछ मिनटोंके बाद उन्होंने मुझे स्थानोंके नाम आदि बतलाने शुरू किये। यह जातीय कलाशाला है, यह अमुक स्थान है इत्यादि, इत्यादि। इस

तरह प्रेमपूर्वक स्थानोंको बतलाते हुए, उस युवक केप्टनको देखकर मुझे फिर अपने ऊपर अफ़सोस हुआ। मैं उक्त देवीके मकानपर गया।

इङ्गलैंडमें, और वही यूरोपमें भी है, जिससे अधिक घनिष्ठता आदमीकी हो जाती है, उसे आनुवंशिक नामको (जैसे हमारे यहाँ तिवारी, सिंह आदि) छोड़ निजी नामसे बुलाया जाता है। मेरा और उस देवीका परिचय यद्यपि एक ही दिनका था, तो भी वह इतना काफ़ी था कि, उसने मुझे राहुल कहकर बुलाया। चाय-पानके बाद उन्होंने संग्रह और मकानके बारेमें बतलाया—मिस्टर लेंडन मेरे स्नेही मित्र थे। वह इसी घरमें रहा करते थे। पूर्वमें बहुत समय तक रहनेके कारण वह बहुत ही एकान्तप्रेमी हो गये थे। जब कभी मैं यहाँ आती थी, तो उन्हें पर्दा आदि गिराकर इसी अँधेरे कमरेमें अपने संग्रहके बीचमें बैठा पाती थी। पिछले समयमें वह सब काम छोड़ एकान्त सेवन करना चाहते थे; किन्तु परराष्ट्र विभाग उन्हें चैन नहीं देता था। इसी मकानमें उनका देहान्त हुआ। उस वक्त मैं अमरीकामें थी। मुझे जब मालूम हुआ, तो अपने खानदानका पुराना मोतियोंका हार बहुत सस्तेमें बेंचकर मैंने इस मकान और संग्रहको खरीद लिया। मैंने एक सज्जनपर भरोसा करके उनके ज़रिये सब काम करवाया था। जब मैंने यहाँ आकर देखा, तो कलाकी वस्तुओंमें बहुत-सी सुन्दर चीज़ें, उन्होंने उड़ा ली थीं। मैंने भी चीज़ोंको देखते वक्त इस बातकी सत्यताका पता पाया। संग्रहमें चित्रपट, मूर्त्तियाँ, पूजा-भाँड, तिब्बती और चीनी प्याले और दूसरे बर्तन आदि थे। वहाँ कार्ड साइजमें काले, मोटे, हाथके बने काग़ज़पर सुनहली स्याहीसे लिखे बहुत ही सुन्दर एक सौसे ऊपर चित्र देखे। देवी समझती थी कि, यह खेलनेके ताश हैं। मैंने उनके मोलको बतलाया। और यह भी कहा कि आप इसे यहाँ किसी

दूसरे या केन्सिङ्टन् म्युज़ियम्में दे दें; चाहे दामसे या मुफ्त। क्योंकि ऐसी दुर्लभ चीज़ें किसी प्रामाणिक सार्वजनिक संस्थामें रहें, तो सुरक्षित रहती हैं। मैंने श्रीकेम्बेलको भी इन चित्रोंके बारेमें कह दिया। आशा है, वह आकर केन्सिङ्टन् म्युज़ियम्की शोभा बढ़ायेंगे। देवीने ऊपरका घर भी दिखलाया। सभी चीज़ोंसे सुरुचिकी झलक आती है। उन्होंने अपने लड़केका चित्र दिखलाकर बतलाया कि, वह आजकल मिश्रमें फ़ौजका अफ़सर है। लन्दनमें मुझे और भी देवियोंसे मिलनेका मौक़ा मिला; और, उनकी मधुर स्मृति भी मेरे हृत्तलपर अंकित है; किन्तु इस देवीमें तो मुझे माताका-सा प्रेम दिखलायी पड़ा, यद्यपि मिलनेका मौक़ा दो ही बार हुआ। बिना किसी भूमिकाके यह भाव पैदा हो जाना, शायद किसी चिरन्तन सम्बन्धके कारण हो। देवीने लेंडन साहबके संग्रह किये चित्रपटोंमेंसे दो अच्छे चित्रपट दिये—एक चक्रसंवरका, जो कि नेपालका बना है; और, उसपर चौरासी सिद्धोंमेंसे भी कुछके चित्र अंकित हैं, नीचे नेवारी अक्षरमें समय आदि भी लिखा है, दूसरा षडभुज महाकालका जो कि काले कपड़ेपर है; और, अपने ढंगका एक सुन्दर और दुर्लभ नमूना है। यह चित्र भी अब मेरे चित्रोंके साथ पटना म्युज़ियम्में हैं।

वहाँ रहते मेरे चित्तमें यह बराबर प्रश्न उठता रहा कि, भारत जानेवाले अंग्रेज़ क्यों उतने अच्छे नहीं होते, जितने कि, इङ्गलैंडमें रहनेवाले। मुझे इसके निम्न कारण समझ आये—(१) प्राय: उन्हीं खानदानोंके आदमी अफ़सर बनकर भारत जाते हैं, जिनके घरमें पीढ़ियोंसे भारतीयोंको नीची दृष्टिसे देखनेकी परम्परा-सी बन गयी है। (२) नये और प्रतिभाशाली युवक भारतको नौकरियोंकी ओर एक तो दृष्टि ही नहीं डालते; क्योंकि भारतमें आनेपर उनकी राजनीतिक महत्त्वा-

कांक्षाकी पूर्त्तिकी गंजाइश नहीं रहती; और, जो आते भी हैं, वह यदि तरक्की और सफलता चाहते हैं, तो अपनी क्लबों और मीटिंगोंमें भारतीय घृणाके प्रभावको अपने भीतर डालनेके लिये मजबूर हो जाते हैं अन्यथा कुछ ही दिनोंमें या तो उन्हें इस्तीफा देकर चला जाना पड़ता है, अथवा उपेक्षित हो बिना विशेष तरक्कीके जैसे-तैसे दिन गुज़ार लेना पड़ता है। (३) सुसंस्कृत निर्भय भारतीयोंसे समानताके साथ दिल खोलकर मिलनेका उन्हें मौक़ा नहीं मिलता। (४) भारतीयोंकी कुछ सामाजिक बुराइयाँ और विषमतायें भी उनकी सुनी-सुनायी बातोंको दृढ़ कर देती हैं। इङ्गलैंड जानेका मुझे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि, अंग्रेज़ जातिके प्रति जो भ्रमात्मक भाव मेरे दिमाग़में घुस गये थे, अपने स्वतंत्र भावोंको बिना बदले, वह जाते रहे। हाँ, मैं इतनेसे आशा नहीं कर सकता कि, उन भारतीयोंके भाव भी बदल जायँगे, जिन्होंने इङ्गलैंडके अंग्रेज़ों को नहीं देखा; और, जिनके लिये अंग्रेज़ जातिका वही रूप है, जो उन्हें भारतमें आये अंग्रेज़ोंमें मिलता है। भारतीयोंको इस बातमें मैं बिलकुल निर्दोष नहीं कहता।

लन्दनमें एक बर्मी बौद्ध सज्जनका देहान्त हो गया था। २३ सितम्बरको उनके समाधि करनेका दिन था। हम दोनों भिक्षु उसमें निमंत्रित किये गये थे। लन्दनमें मुर्दोंके जलानेका भी अब इन्तज़ाम है।

वहाँके तथा यूरोपके और भी कई स्थानोंके ईसाइयोंने यह मान लिया है कि, मुर्देको जला देनेपर ख़ुदा मियाँको कयामतके दिन खड़ा करनेके लिए उसके शरीरके परमाणुओंको जमा करनेमें दिक़्क़त नहीं होगी। ख़ुदाकी तकलीफ़के ख्यालका बोझ अब मुसलमानोंके सिरपर ही रह गया है। वह समझते, यदि जला॰

दिया, तो इस्राफीलके कयामतका धोंतू फूँकते वक्त मुर्दे उठेंगे कैसे ? अस्तु। लन्दनमें और दूसरे शहरोंमें भी मुर्दोंके जलाने-दफ़नाने आदिका काम कुछ कम्पनियाँ करती हैं, जिन्हें अण्डर-टेकर (under-taker) कहते हैं। मोटरें, पर्दे, कंधे लगाने-वाले आदमियोंके कपड़े आदि सभी काले होते हैं। आप फ़ोनसे बुलाइये और कुछ मिनटोंमें सब सामानके साथ वह वहाँ पहुँच जाते हैं। हम लोग जब मकानपर पहुँचे, तो उन कृष्णवस्त्रधारी पुरुषोंने शवको उठाकर काली मोटरपर रखा और स्वयं भी उसीपर बैठ गये। उस मोटरके पीछे-पीछे हमारी मोटर भी चली। हम लोग शहरसे बाहर बहुत दूर टेम्सके किनारे पहुँचे। क़ब्रगाहके पास ही दाहन घर भी है। दाहन घरके हम भीतर तो देखने नहीं गये; किन्तु बतलाया कि, आग उसमें इतनी तेज़ होती है कि, मुर्देके जलते देर नहीं लगती; और, कुछ समय बाद राख मिल जाता है। कहाँ एक घर लाखों मुर्दोंको हजारों वर्ष तक जलानेके लिए काफ़ी; और, कहाँ हवा-पानीके गन्दा करनेवाले क़ब्रगाह हैं, जो बहुत-सी उपजाऊ ज़मीनको अब भी घेरे हुए हैं; और, घेरते ही जा रहे हैं। यूरोपके लिए समझदारों-को इसका फ़ायदा क्यों न मालूम हो, जब कि सहस्राब्दियों पूर्व उनके भी आर्य पूर्वज जलाते ही थे। हमारे बौद्ध बन्धुके घरसे जलानेकी अनुमति नहीं आयी थी; इसलिए लोगोंने समाधिस्थ करना ही पसन्द किया। पीछे जलानेकी अनुमति आनेपर उसके लिए भी आसानी थी। क़ब्रगाहके फाटकपर कृष्णवस्त्रधारी पुरुषोंने शवको अपने कन्धेपर उठाया। क़ब्र खुदकर तैयार थी। हमारे-सामने शव-पेटिकाको भूमिपर रख दिया गया। फिर अंग्रेज और प्राग्देशीय बौद्ध जनोंने त्रिशरण और पंचशीलको भदन्त आनन्दके मुखसे ग्रहण किया। आनन्दजीने बुद्धके मुखसे निकली अमर गाथा—'अनिच्चावत संखारा'

(सभी उत्पन्न हुई चीज़ें मरनेवाली हैं, या सभी बनी चीज़ें बिगड़नेवाली हैं)को कह एक छोटा-सा उपदेश दिया। फिर वस्त्र आदिका दान दिया गया। अन्तमें एक टोटी लगे बर्तनसे दूसरे कटोरेको भरते हुए इस गाथाका पाठ हुआ—

'यथा वारिवहा पूरा परिपूरेन्ति सागरम्।
एवमेवइतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति'

(जैसे बादल अपने पानीसे समुद्रको परिपूर्ण करते हैं, वैसे ही यहाँ दिया हुआ (=प्रेत जन्मान्तरमें प्राप्त)को मिलता है)। फाटकपर रखे रजिस्टरपर हस्ताक्षरकर, दो बजे तक हम लौटकर विहारमें चले आये।

८

लन्दनमें साढ़े तीन मास (घ)

अछूतोंके सम्बन्धमें *महामंत्रीके फ़ैसलेके ख़िलाफ़ महात्माजीके उपवासकी ख़बर लन्दनके अख़बारोंमें उल्कापातके तौर-पर थी। विलायतके पत्र भारतीय सत्याग्रह आन्दोलनके सम्बन्धमें चुप्पीसे काम लेते रहे। वह समझते थे कि भारतके धर-पकड़, मारपीटकी ख़बरें छापनेमें वहाँके लोगोंमें विरोधी-भाव उत्पन्न होते हैं; लेकिन उपवासकी बातको रोक नहीं सकते थे; क्योंकि यह तो महापुरुषके जीवन-मरणका प्रश्न था। यह ख़बर पढ़कर चीनी विद्यार्थी मेरे पास आये। उन्हें यह नहीं समझ आता था कि, अछूत आदमी किसे कहते हैं? मैं पहले साधारण तौरसे समझाना चाहता था; किन्तु देखा उनके पल्लेमें कुछ नहीं पड़ रहा है। क्योंकि भारतके बाहर यदि कोई ऐसी बीमारी हो तब न? आखिर मैंने उपमासे काम लिये। बुद्धका कहना है, उपमासे समझ रखनेवाले आदमी समझ जाते हैं। मैंने कहा, भारतमें अतिपुरातन कालमें काले रंगकी जाति रहती थी। फिर वहाँ एक गोरे रंगकी जाति आयी। गोरी जातिने काली जातिको हटाकर सभी आर्थिक लाभके व्यवसायोंको

---

*रैमज़े मकडोनल्ड (तत्कालीन ब्रिटिश प्रीमियर)

हथियाना शुरू किया और काली जातिको घृणाकी दृष्टिसे देखने लगी। उसने काली जातिको अपनी बस्तियोंसे बाहर रहनेको बाध्य किया। उनका अपने धार्मिक उत्सव आदिमें शामिल होना बन्द कर दिया। उनके साथ शादी-ब्याह निषिद्ध कर दिया, जैसा कि आजकल अमेरिकाकी गोरी जातिने वहाँकी काली जाति हब्शियोंके साथमें किया है। आज इस बातको आरम्भ हुए तीन-चार हज़ार वर्ष बीत गये और अब यद्यपि कितनी गोरी जातिकी संतति कालोंसे भी काफ़ी काली है, और कितनी ही काली जातिकी संतान गोरोंमे भी गोरी, तो भी वह पुरानी बात जिसने पीछे धर्मकी व्यवस्था भी अपने पक्षमें कर ली, अब भी उतनी जीवित है। यही अछूतपनकी समस्या है। घंटों मगज़ मार करके हमने यह समझाया तो और उन्होंने सिर भी हिला दिया; किन्तु तब भी भारतके सड़े दिमाग़की धरोहर इस अछूतपनको अच्छी प्रकार वह समझ पाये होंगे, इसमें तो मुझे सन्देह ही रहा। २७ सितम्बरको महात्माजीके उपवासके तोड़नेकी खबर सुनकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई!

१५ अक्टूबरको तिब्बती चित्रोंकी प्रदर्शनीका उद्घाटन हुआ। इसी वक्त सर्वप्रथम मुझे श्रीक्रिस्मस हम्फरीके दर्शनोंका मौक़ा मिला। आप लन्दनके एक जजके पुत्र तथा स्वयं भी बैरिस्टर हैं। लन्दनकी बुद्धिष्ट लाज का (=बौद्धसभा) प्रधान ही नहीं; बल्कि उसकी आत्मा हैं। 'बुद्धिज्म-इन्-इङ्गलैंड' मासिक-पत्र इसी संस्थासे निकलता है। आप, उस पत्रके सम्पादक हैं। इङ्गलैंडमें बौद्धधर्मके प्रचारमें आपकी धर्मपत्नी श्रीमती हम्फरी भी बड़ा उत्साह रखती हैं। बौद्धधर्मसे प्रेम होनेके नाते बुद्धकी जन्मभूमिसे प्रेम होना स्वाभाविक ही है। आज प्रदर्शनीका उद्घाटन आपने ही किया। श्रीहम्फरी और उनकी सभाने महाबोधि सभाके कामसे पहलेसे ही अपना प्रचार

कार्य शुरू किया है। इस संस्थाने कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं। उसके बाद तो कई वार हम्फरी दम्पतीसे वार्त्तालापका मौक़ा मिला। और तबसे हमारा सन्निकट बन्धुत्व स्थापित हो गया है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि, चित्रोंके बारेमें फोटो सहित लेख लन्दन और बाहरके बहुतसे पत्रोंने लिखा। लन्दनमें समाचार पत्रोंको फ़ोटो देनेवाली पृथक् कम्पनियाँ भी हैं। उसी प्रकार ग्राहकोंके बारेमें पत्रोंमें छपी बातोंको काटकर भेजनेके लिये भी कम्पनियाँ हैं। इनके यहाँ इसके लिये सैकड़ों लड़कियाँ नौकर हैं। बौद्धविहार भी उनका एक ग्राहक था; इसलिये कटिङ्ग आती रहती थी।

लंकासे तीन मासके रहनेकी बातको स्वीकार कर ही मैं लन्दन गया था। सितम्बरमें ही मैंने सभावालोंको लंका लिख दिया कि, मैं लौटना चाहता हूँ, किन्तु उनके और अनागरिक धर्मपालके पत्रोंमें यही रहता था कि, अभी और रहें। मुझे अपने कामकी फ़िक्र थी, इसलिये मैंने लौटनेका निश्चय कर लिया था। तिब्बतसे बीस-बाईस खच्चर पुस्तकें और चित्रपट जो मैं लाया था, वह अब तक लंकामें रखे थे। वहाँ भी मैं देखता था कि, ज़रा-सी असावधानीमें कीड़े घुस जाते थे। अब हम इस चिन्तामें थे कि इन्हें कहाँ रखना ठीक होगा। मुझे विहारमें ही रखना अभीष्ट था। इसलिये वहींकी संस्थाओंकी ओर मेरी नज़र गयी। जब तक अपने चित्रपटोंको यूरोप नहीं ले गया था, तब तक असलमें उनके मोलको भी मैं नहीं समझता था। वहाँके संग्रहालयोंके चित्रोंको जब देखा, और लोगोंकी सम्मतियोंको भी सुना, तब मुझे मालूम हो गया कि, इतना सुन्दर तिब्बती चित्रपटोंका संग्रह यूरोपमें भी नहीं है। तब मुझे और भी इनकी सुरक्षाकी चिन्ता हुई। मैं और भदन्त आनन्द

दोनों महीनोंके परामर्श करनेके बाद इस परिणामपर पहुँचे कि, पटना म्युजियमको छोड़कर कोई दूसरी संस्था नहीं है, जिसपर विश्वास किया जा सके। वह सुरक्षित रख सकेगी। हमारे सामने सरकारी और ग़ैर सरकारीका प्रश्न था; किन्तु हमें वस्तुकी सुरक्षाके सामने अपने पक्षपातोंको ताक़पर रख देना पड़ा। शर्त यही रखी गयी कि, यदि किसी समय नालन्दामें संग्रहालय बने, तो इन्हें वहाँ भेज देना होगा; और साहित्यिक कामके लिये उनके उपयोग करनेमें हमें स्वतंत्रता रहेगी। (इन्हीं शर्तोंपर पीछे प्रायः अपने ७ टन ग्रंथोंके संग्रहको भी हमने पटना म्युजियमको दे दिया)। १७ अक्टूबरको हम चित्रपटोंके सम्बन्धमें उक्त निर्णयपर पहुँचे थे। लेकिन म्युज़ियम् के प्रेसीडेन्ट श्रद्धेय *जायसवालजीको पत्र २८ अक्टूबरको लिखा। पेरिस पहुँचनेपर, लन्दनसे अनुप्रेषित उनका स्वीकृतिका तार मुझे मिल गया।

मेरा इरादा यूरोपके कुछ और देशोंको भी देखनेका था। इसलिये पर-राष्ट्र कार्यालयको अपना पासपोर्ट भेजकर कुछ देशोंमें जानेकी स्वीकृति माँगी। १६ अक्टूबरको फ्रांस, बेल्जियम, लुक्समबर्ग, स्वीटजरलैंड, इटली, हालैंड, स्पेन, पुर्तगाल, जर्मनी, आस्ट्रिया आदि देशोंकी स्वीकृति लिखकर चली आयी।

१३ नवम्बरको कार्तिक पूर्णिमा थी; इसी दिन आर्य-सारिपुत्रका नालन्दामें देहान्त हुआ था। हमारी सलाह हुई कि, उस दिन आर्य-सारिपुत्रके अस्थिको मँगवाकर; श्रद्धांजलि अर्पणकी जाय। श्रीकेम्बेल मेरे चित्रोंको देखने एक दिन विहारमें आये थे, उस दिन उनसे मैंने इस बातकी सलाह की। उन्हें भी बात

*स्वर्गीय महामहोपाध्याय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल, पटना-म्युज़ियमके तत्कालीन क्यूरेटर।

पसन्द आयी, कहा, आप ट्रस्टियोंको लिखें मैं भी कोशिश करूँगा। हमने पत्र लिखा। हमने कह दिया था कि, लन्दनमें केन-सिङ्गटन म्युजियम्से अधिक सुरक्षित स्थान उन अनर्घ अस्थियोंके लिये नहीं है। हम चाहते हैं कि, अपने कर्मचारीसे सुरक्षित तौरपर कुछ घण्टोंके लिये भेजें। वहाँ जब मामला पेश हुआ तो एक पेचीदगी पैदा हो गयी। केन-सिङ्-टन म्यु-जियम्में एक काठके स्लीवका टुकड़ा भी है, जिसे रोमन-कैथलिक कहते हैं कि, यह वही है जिसपर कि महात्मा ईसाको सूली दी गयी थी। सवाल हुआ कि, फिर वह लोग यही माँग पेश करेंगे। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि, म्युजियमके ही एक कमरेमें उनके इच्छानुसार इसे रखा जाय। कार्तिक पूर्णिमाको लन्दनके बहुतसे बौद्ध नर-नारि वहाँ पहुँचे। अपने एक भारतीय पूर्वजके सम्मानमें हम दोनोंके अतिरिक्त कुछ और भारतीय भी पहुँचे थे, जिनमें श्री मुकुटबिहारी दर युक्त प्रान्तमें डिप्टी कलेक्टर हैं और मेरे मित्र काशीवासी *श्री मोतीचन्द भी थे। हाँ, श्री सटलवर्थ भी वहाँ पहुँचे थे। हम लोगोंने वहाँ अपनी भक्ति-पुष्पाञ्जलि भी अर्पण की।

यहाँ एक और सहृदय सज्जनका स्मरण कर लेना है। इनसे कई बार वार्त्तालापका मुझे मौक़ा लगा। आपका नाम श्रीमेक्स मण्डलक है। आप यहूदी जातिके एक तरुण दार्शनिक हैं। उनकी एक पुस्तक उस वक्त 'चेतनाके कृत्य और उसकी बनावट' प्रेसमें थी; और, मेरे लन्दन छोड़नेके कुछ ही दिनोंमें प्रकाशित हो गयी। मुझे उन्होंने एक प्रूफ़कापी प्रदान की। 'चेतना'पर इतनी सरलता और गम्भीरतापूर्ण विवेचन करना

---

*प्रिन्स् आफ़ वेल्स् म्यूज़ियम् (बम्बई)के मौजूदा क्यूरेटर डाक्टर मोतीचंद (१६४५)।

उनका अपना काम तो है ही साथ ही उन्होंने अपना एक नया दर्शन उस पुस्तकके द्वारा संसारके सामने रखा है। अपनी विचारधाराके ऊपर बहनेकी बात कहते हुए बतलाया था कि, वह आक्सफोर्डके विद्यार्थी थे। उसी वक्त उन्हें एक भयंकर बीमारीने आ पकड़ा, जिसके कारण तीन साल तक वह चारपाईसे उठनेके लायक़ न रहे। इन तीन वर्षोंमें अपनी आन्तरिक अवस्थापर वह व्यापक विचार करने लगे। वह इस निष्कर्षपर पहुँचे कि, प्रकृतिके साथ प्रतिकूलता ही दुख है, और अनुकूलता ही सुख है। प्रकृति स्वयं ही विद्युतसे भी अधिक शीघ्रता प्रवर्तित हो रही है इत्यादि-इत्यादि। पुस्तक बहुत बड़ी नहीं है और यद्यपि उन्होंने अपने सिद्धान्तकी पुष्टिमें आइन्स्टाइनके सापेक्षता-वाद, भौतिक विज्ञानियोंकी कितनी ही नवीनतम सिद्धान्तोंको पेश किया है, तो भी भाषा इतनी सरल है कि, समझनेमें दिक़्क़त नहीं होती। अपने दर्शन प्राप्त कर लेनेके बाद, उन्हें पता लगा कि, उनका दर्शन बुद्धके दर्शनके समीपतम है।

१ नवम्बरको इण्डिया हाउसके पुस्तकालयमें गये। यहाँ भी भारतीय पुस्तकों और चित्रोंका भारी संग्रह है। यह उसी डाउनिङ स्ट्रीटमें है, जिसमें इङ्गलैंड-सरकारकी और आफ़िसें हैं। यहाँसे एक साथ पाँच पुस्तकें पढ़नेको मिल जाया करती हैं। मैं भी वहाँसे पाँच पुस्तकें साथ लाया।

१४ नवम्बरको पेरिसके लिये रवाना होना निश्चित हो चुका था; इसलिये लन्दनकी और कुछ जगहोंको देख लेना था।

६ नवम्बरको श्रीएलिस मेरे साथ हुए। पहले ऋषि मार्क्सकी समाधि देखने जाना था। टेक्सी करके (क्योंकि दयाने अपनी मोटर बेंच डाली थी और नयी ला न सके थे) हम लोग हाई-गेटके उस क़ब्रिस्तानकी ओर चले, जहाँ संसारका वह महान्

उद्धारक और तत्त्ववेत्ता आखिरी नींद भोग रहा है। जानेपर मालूम हुआ कि, वहाँ इस नामके दो क़ब्रिस्तान हैं, एक रोमन-कैथलिकोंके लिये और दूसरा दूसरोंके लिये। रोमन-कैथलिक क़ब्रिस्तानमें भला उस घोर नास्तिकको कहाँ जगह मिल सकती थी? हम लोग दूसरे क़ब्रिस्तानकी ओर गये। फाटकपर फूल बिक रहे थे। हम तो देवताके स्थानपर जा रहे थे; इसलिये श्री एलिससे कहा कि, फूल ले लीजिये। क़ब्रिस्तानके सिपाहीने पूछा, वह उस त्राणकर्त्ताके क़ब्रसे वाक़िफ़ नहीं था; किन्तु दूसरेने बतलाया मैं जानता हूँ। थोड़ी देर में छोटी-छोटी (यानी ग़रीबों-की) क़ब्रोंको पारकर हम उस क़ब्रके सामने पहुँच गये। ग़रीबोंके उद्धारके लिये ग़रीबोंके बीच ही सोना चाहिये; और, सो भी एक ग़रीब हो गड्ढे में। आस-पासकी क़ब्रोंसे सिर्फ़ इतना ही फ़र्क़ है कि, सिरहाने किसीने काँच जड़े गोखेमें कुछ नक़ली फूल और शायद लाल झण्डा रख दिया है। इसी चार हाथ लम्बी, दो हाथ चौड़ी ज़मीनके नीचे, जिसके ऊपरी भागमें सिर्फ़ गच की हुई एक चौकोर मेखलामात्र है। कार्ल मार्क्स, उसकी स्त्री, उसका पौत्र और एक और सन्तान चार प्राणी लेटे हुए हैं। ग़रीबोंके हितके लिये अपने जीवनमें वह यातनाएँ सहता रहा, दर बदर फिरता रहा; और, आज ऐसे गुमनाम जगहमें सोया पड़ा है जब कि मनुष्य जातिके एक पंचमांशने उसको अपना गुरु मान लिया है और बाक़ी जगहोंमें भी यदि उसकी दवाको समझा कर पूछा जाय, तो तीन चौथाई लोग उसीके होंगे।

हाईगेटसे टेक्सीकर हम वेस्टमिन्सटर केथड्रलको गये। यह रोमन-कैथलिक चर्च है। रोमन-कैथलिक मूर्त्ति-पूजक होते हैं और उनके मन्दिरोंमें मूर्त्ति, धूप, बत्ती, घंटा आदिका वैसा ही ज़ोर है, जैसे हमारे यहाँ मन्दिरोंमें। इस मतके सभी पुरोहित

अविवाहित भिक्षु होते हैं। पूजा-पाठ, टंट-घंटका भी बहुत जोर है। इसका परिणाम यह है कि, प्रोटेस्टेंट या सुधारवादी सम्प्रदायके गिर्जे, जहाँ खाली होते जा रहे हैं, वहाँ इनके गिर्जे, अपेक्षाकृत अधिक भरे रहते हैं।

वेस्टमिन्सटर कैथड्रलसे लौटकर हम वेस्टमिन्सटर एबीमें आये। यह पार्लियामेंट घरके पासमें है। इङ्गलैंडके महापुरुषोंकी समाधियाँ और मूर्त्तियाँ आप यहाँ इकट्ठा ही देख सकते हैं। किसी जगह राजा-रानियोंकी क़ब्रें हैं, तो किसी जगह सेना-नायकोंकी। कवियोंके कोनेमें इस प्रकार अंग्रेजी साहित्यके अमरकवियोंकी पायेंगे।।

वेस्टमिन्सटर एबीके पास ही टेम्स-तटपर पार्लियामेंट हाउस है। मकान पत्थरके हैं। लार्ड सभा और साधारण सभा-की बैठकें यहीं अलग-अलग शालाओंमें हुआ करती हैं।

५ नवम्बरसे पहले एक दिन हम शहरमें जा रहे थे कि, मुँहको लाल-पीला रँगे लड़के जमा हो गये। वह गाई फॉक्सके (Guy Fawkes) लिये पैसा माँग रहे थे। कोई दो सौ वर्षसे ऊपर हुए, जब गाई फॉक्स नामका एक पुरुष हुआ था। उसे पार्लियामेंटकी कार्रवाइयोंसे अधिक असन्तोष हुआ। उसने अपने असन्तोषको इस प्रकार प्रकट करना चाहा कि— पार्लियामेंट हाउसके तहखानेमें बारूद जमा कर दी। इस ताकमें था कि, जब सभासद् जमा होकर सभा आरम्भ करें, उसी समय आग लगा दें। समयके कुछ ही समय पूर्व भेद खुल गया। गाईको प्राण-दण्ड हुआ। उसीकी स्मृतिमें आज भी लन्दनके लड़के चन्दासे गाईके पुतलोंको होलीकी तरह जलाते हैं।

५ नवम्बर लड़कोंकी इस होलीका दिन है।

१

आक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय

केम्ब्रिजसे हो आनेके बाद शीघ्र ही आक्सफ़ोर्ड देख आनेकी इच्छा थी; किन्तु आज-कल करते-करते हमारे लन्दनसे प्रस्थानकी बेला आ पहुँची। चौदह नवम्बर (१६३२ ई०)को हमें लन्दनसे फ़्रान्स और जर्मनीके लिये चल देना था। सलाह हुई कि १० नवम्बरको आक्सफ़ोर्ड चलना चाहिये। फोन्सेका महाशय हमारे साथ चलनेके लिये तैयार हुए। भदन्त आनन्दने भी चलनेके लिये कहा था। किन्तु चलनेवाले दिनकी पहली रातको खूब कुहरेका ज़ोर रहा। प्रातःकाल भी वह बिल्कुल गया नहीं था। आनन्दजीको ऐसे भी अभी बहुत दिनों तक लन्दनमें रहना था। फलतः वह नहीं जा सके। हम दोनों दस बजेसे पूर्व, रेलसे, आक्सफ़ोर्डके लिये रवाना हुए। सर्दी खासी थी। किन्तु वह तभी तक सताती है, जब तक आप मकान या रेलके डब्बेके बाहर हैं।

आज केम्ब्रिज-यात्रा जैसा बाहरके दृश्य देखनेका आनन्द नहीं रहा। कुहराके मारे पहले तो डर लगा कि, शायद देखनेका मजा ही किरकिरा हो जाय; किन्तु इन्द्र देवताने (जो बादलके स्वामी तो जरूर हैं, कुहरेको बादलमें शामिल कर लेनेपर यह भी उन्हींका दास होगा) मित्रताका हाथ फैलाया और धीरे-धीरे

कुहरा हट गया। तो भी भीतरकी गर्मीके कारण काँचकी खिड़कियाँ बार-बार भाफमें ढक जाती थीं। बीच-बीचमें काँच साफ़ करके जो देखा, तो केम्ब्रिज-यात्रा-सा ही पाया। वही विषमतल खेत, पत्तोंके बिना सूखकर काँटे हो गये-से वृक्ष, कृषकोंके सीधे-सादे मकान आदि, आदि।

ग्यारह बजेके बाद हम आक्सफ़ोर्ड पहुँचे। द्रष्टव्य स्थानोंको देखनेसे पूर्व भोजनसे निवृत्त हो जानेकी सलाह हुई। हम एक भोजनशालामें चले गये और कुछ ही मिनटोंमें भोजनसे छुट्टी पा ली। स्टेशनसे विश्वविद्यालय कुछ दूरपर है; किन्तु मोटरबसें बराबर दौड़ती रहती हैं।

आक्सफोर्ड भी केम्ब्रिजकी भाँति पहले ईसाई भिक्षुओंका मठ था। पढ़ने-पढ़ानेका जो सिलसिला शुरू हुआ, वह धीरे-धीरे एक बड़ी शिक्षा-संस्थामें परिणत हो गया। १६वीं शताब्दीके मध्यमें, जब इङ्गलैंडमें सुधार-वादकी तूती बोलने लगी, तब फिर यह मठोंके बजाय विद्यालय-मात्र बन गये तो भी वेष-भूषा, तथा दूसरी कितनी ही बातोंमें, अब भी दोनों में पुराने मठोंकी छाप है। यद्यपि आक्सफ़ोर्डके भिक्षु-मठकी स्थापना आठवीं शताब्दीके पूर्व हुई थी (चीनी परिव्राजक युन्-च्वाङ् (हुएनसांग) के नालन्दासे पढ़कर चले जानेके एक शताब्दी बाद); किन्तु उस वक्त इसका शिक्षण-संस्थाके तौरपर कोई महत्त्व न था, न उतना विस्तार ही था। आक्सफ़ोर्डका सबसे पुराना मेर्टन् कालेज १२६४ ई०में स्थापित हुआ था। केम्ब्रिजके सबसे पुराने कालेज पीटर हाउस (स्था० १२८४ ई०)से बीस वर्ष पहले और हमारे नालन्दा, विक्रमशिलाके विध्वस्त होनेके ६४, ६५ वर्ष बाद); तो भी पिछले समयमें आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज अपनेको प्राचीनतर साबित करनेके लिये बड़ा विवाद करते रहे; जाली प्रमाण तक पेश

करते रहे। अब भी दोनों विश्वविद्यालयोंमें कुछ होड़ है; किन्तु वैसी कड़वी नहीं।

आक्सफोर्डके भिन्न-भिन्न कालेजोंका स्थापना-काल इस प्रकार है—

	ई०
मेर्टन् कालेज	१२६४
लिंकन कालेज	१२७७
बेलियोल् कालेज	१२६०-६६
यूनिवर्सिटी कालेज	१२८०
एक्सेटर कालेज	१३१४
ओरियेल कालेज	१३२४
न्यू कालेज	१३७९
आल-सोल्स-कालेज	१४३७
मौड्लिन् कालेज	१४४८
ब्रीसनोज कालेज	१५०९
कोर्पस् क्रिस्टी कालेज	१५१६
क्राइस्ट चर्च कालेज	१५२५
ट्रिनिटी कालेज	१५५५
सेंट जान्स कालेज	१५५५
जीसस कालेज	१५७१
वाढम् कालेज	१६१०
पेम् ब्रोक कालेज	१६२४
वर्सेस्टर कालेज	१७१०
केबल कालेज	१८४९
हार्टफोर्ड कालेज	१८७४
मेन्स फील्ड कालेज १८८६-९	} विश्वविद्यालयके
मंचेस्टर कालेज १८९१-३	} अंग नहीं

स्त्रियोंके कालेज—

लेडी मार्ग्रेट हाल	१८७८	१६२० ई०से विश्वविद्यालयके अन्तर्गत
समर विल कालेज	१८७६	
सेंट ल्यूस कालेज	१८८६	
सेंट हिल्दास कालेज	१८६३	

अब आइये, एक तरफ़से हम इन कालेजोंकी सैर करें। क्राइस्ट चर्च कालेज (स्था० १५२५ ई०)से शुरू करनेमें सुभीता है। हमने चाहा कि, किसी प्रदर्शक (Guide) को ले लें; लेकिन मालूम हुआ कि पेशेवर प्रदर्शकोंको कालेजोंने मनाही कर दी है। किन्हीं-किन्हीं जगहोंमें कालेजोंने अपने प्रदर्शक रख छोड़े हैं। यहाँ हमें एक प्रदर्शक मिल गया। उसने कालेजके तृणाच्छादित स्वच्छ प्रशस्त प्रांगणमें खड़े होकर बतलाना शुरू किया—"देखिये महाशय! यह कालेज १५२५ ई०में स्थापित हुआ था। द्वारके गोपुरका नक़शा देनेवाले प्रसिद्ध वास्तुशास्त्री सर क्रिस्टोफर रेन् थे, जिन्होंने आक्सफोर्डकी कितनी ही तथा लंदनकी भी बहुत-सी इमारतोंके नक़शे तैयार किये थे। गोपुरको 'टामटावर' कहा जाता है। इसके ऊपर प्रायः २१० मनका घंटा है, जिसे 'ग्रांट-टाम्' कहा जाता है। यह इङ्गलैंडके सबसे बड़े घटोंमें चौथे नम्बरका है। हर रातको नौ बजकर पाँच मिनटपर, मूल स्थापकोंकी स्मृतिमें यह १०१ बार बजा करता है। आइये चलें, अब हम यहाँकी भोजनशालाको दिखलावें।"

पूर्व-दक्षिणके कोनेमें सीढ़ीसे हम ऊपर चढ़े। द्वार खोलकर वह हमें भीतर ले गया। यह भोजनशाला क्या है, एक सुन्दर विशाल भवन है, जिसमें ऊपरकी ओर दीवारोंमें, चारों ओर कालेजके पुराने अध्यापकों और विद्यार्थियोंके सुन्दर-सुन्दर चित्र टँगे हुए हैं। इन चित्रोंका संग्रह १५२६ ई०से होने लगा था—

अकबरके सिंहासनारूढ़ होनेसे भी पूर्व। नीचे, फ़र्शपर, मेज़ और कुर्सियाँ लगी हुई हैं। मेज़पर हाथ रखकर उसने बतलाया, यह तीन सौ वर्षका पुराना है। एक जगह एक भाषण-फलक या रोस्ट्रम् था। उसे दिखाते हुए कहा, दो सौ वर्ष पहले अमुक राजाने इसे प्रदान किया था। चित्रोंके बारेमें भी उसने इसी प्रकार बतलाया। बग़लके प्रांगणके दक्षिण ओर पुस्तकालय और चित्र-शाला हैं। क्राइस्ट चर्च कालेज आक्सफ़ोर्डका सबसे बड़ा और अति प्रसिद्ध कालेज है। इसे यूरोपका अद्भुत शिक्षण और धार्मिक संस्था कहा गया है। लार्ड केनिंग, पील, वेलेसली, डलहौसी जैसे शासकों और सैनिकोंको इसने पैदा किया। इङ्गलैंड-के तीन विख्यात महामन्त्री (ग्लेड्-स्टन्, सालिसबरी और रोज-बरी) जो लगातार एक दूसरेके बाद हुए, उन्हें भी प्रदान करनेका सौभाग्य इसी कालेजको है। महात्मा गान्धीके गुरुकल्प जान रस्किन भी यहींके विद्यार्थी थे। सम्राट् सप्तम एडवर्ड और विलायतके लार्डोंकी एक बड़ी तादाद भी यहींकी है।

पासमें ही क्राइस्ट चर्चका केथड्रल् (गिरजा) है। यह १५२४ ई०में बना था। आक्सफ़ोर्डके प्रधान पुरोहित (=विशप)का यह मुख्य गिरजा है। सुधार-वादके पूर्व जब प्राचीन पंथका जोर था, तब भी यह भिक्षुओंका प्रधान पीठस्थान था। इसके एक कोनेमें उस पुराने मन्दिरका भाग भी सम्मिलित है, राजा एथरेल्ड द्वितीयने १००४ ई०में जिसका जीर्णोद्धार करना शुरू किया था। आठवीं शताब्दीमें सेंट फ्राइड स्वाइडने इसी स्थान-पर एक भिक्षुणी-विहार बनवाया था। केथड्रलके जँगलोंके काँचोंमें सुन्दर चित्र बने हुए हैं। इस भव्य गिरजेमें काफ़ी दर्शनीय चीज़ें हैं।

फाटकसे बाहर निकलकर दक्षिण तरफ़ थोड़ी दूर जा, फिर

पश्चिम ओर थोड़ा चलकर पेम्ब्रोक् कालेज है। अंग्रेजी साहित्यके प्रकाण्ड पण्डित और कोषकार डाक्टर जान्सन १७२८ ई०में इसीके विद्यार्थी थे। इसके पूर्व इस स्थानको 'ब्राडग्रेटस हाल' कहा जाता था। जनमूलक शासनके भारी पक्षपाती जान पाइम् इसी हालके विद्यार्थी थे।

केम्ब्रिजकी तरह यहाँ भी एक कार्पस क्रिस्टी कालेज है। इसकी स्थापना १५१६ ई०में विनचेस्टरके प्रधान पुरोहितने की थी। इसके आँगनमें १५८१ ई०से स्थापित एक धूपघड़ी है। पूर्वके ज़मानेमें इसकी बड़ी आवश्यकता थी। युन्-च्वाङ्ने नालन्दाके बारेमें लिखा है कि, नालन्दामें जलघड़ी इस्तेमाल की जाती थी; और, घड़ी-घड़ीपर घंटा बजाया जाता था। यह जल-घड़ी लम्बे घड़ेमें एक खास परिमाणका सूराख बनाकर उसे बड़े बर्तन या हौज़में भरे पानीमें रखकर प्रयुक्त होती थी। जब पानी भरते-भरते घड़ा डूब जाता था, तब उसे एक घड़ी समझा जाता था। आजकल यांत्रिक घड़ीके लिये भी घड़ी शब्द हमने उस जलघड़ीसे उधार लिया है। कालको ठीक करनेके लिये धूपघड़ी भी इस्तेमाल होती थी; किन्तु धूपघड़ी रातको और बादल रहनेपर बेकार होती है। इङ्गलैंडमें तो कुहरे और बादलकी भारी मार है। कभी ही कभी यहाँ सूर्यदेवके दर्शन होते हैं। ऐसी हालतमें यह धूपघड़ी उतनी सहायक तो नहीं होती रही होगी। अन्य कालेजोंकी भाँति इसमें भी एक छोटा गिरजा-घर है। यद्यपि आजकलके ज़मानेमें बहुत कम ही लड़के ख़ुदाकी भेंड़ें बननेके लिये तैयार हैं।

यहाँसे हम आक्सफ़ोर्डके सबसे पुराने मेर्टन् कालेजमें पहुँचे। वैसे दो एक और कालेज इससे पहलेके हैं; किन्तु उनका आरम्भ कालेजके तौरपर प्रथम नहीं हुआ था। मेर्टन् कालेज सर्वप्रथम

कालेजके तौरपर १२६४ ई०में स्थापित हुआ। इसकी शाला, पुस्तकालय और गिरजा बहुत दर्शनीय चीज़ें हैं। इसके छोटे दरवाज़ों और छतोंवाले घरोंसे ख़ुद भी इसकी प्राचीनताका अनुमान कर सकते हैं। गिरजाके जँगलोंमें आज भी कितने ही पुराने समयके चित्रित काँच आपको दिखायी पड़ेंगे। प्रथम प्रांगणको पार करनेपर एक दूसरी अँगनई मिलती है, जिसे 'मोब-क्वाट' (१३८०) कहते हैं। यहीं पुस्तकालय है। इसमें उस पुरातन पुस्तकालयकी भी बहुत-सी पुस्तकें और पुस्तकालयके सामान हैं। इङ्गलैंडमें यह अपनी तरहका अद्वितीय पुस्तकागार है। इस पुस्तकालयको चि-चेस्टरके प्रधान पुरोहित विलियम् रीडने १३४९ ई०में, बनवाया था। लार्ड डाल्फ चर्चिल आदि कितने ही इङ्गलैंडके महान् राजनीतिज्ञ और साहित्यसेवी इस कालेजसे सम्बन्ध रखनेवाले थे।

मेर्टन् कालेजसे लगा ही, उत्तर ओर, ओरियल कालेज है। इसका मुख्य द्वार औरोंसे बिल्कुल ही विचित्र है। द्वारके ऊपर कुमारी मरियमके अतिरिक्त आपको तृतीय एडवर्ड और प्रथम चार्ल्सकी मूर्त्तियाँ दिखायी पड़ेंगी। यद्यपि कालेजकी नींव १३२४ ई०में पड़ी थी; किन्तु यह फाटकवाला भाग सतरहवीं सदीके प्रथमार्द्धमें बना था। सोलहवीं सदीके पूर्वकी बहुत कम इमारतें यहाँ मौजूद हैं। स्वर्गीय लार्ड वर्कन् हेड जैसे क़ानूनदाँ और सेसिल रोडस् जैसे व्यवसायीको इसने पैदा किया। राडसने इस कालेजको एक लाख गिन्नियाँ—आजकलके हिसाब से बीस लाख रुपये दान किये।

ओरियलसे सटा ही हुआ, उत्तर तरफ़ यूनिवर्सिटी कालेज है। यह आक्सफ़ोर्डके सबसे पुरातन कालेजोंमें दूसरा है। किन्हीं-किन्हींका कहना है कि, इसीसे आक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालयकी नींव

पड़ी थी। कवि शेली इसका विद्यार्थी था। उसने "अनीश्वरवाद-की आवश्यकता" (The Necessity of Atheism) पुस्तक प्रकाशित की। कालेजके ईश्वरभक्त क्योंकर सहन करने लगे? उन्होंने उस नास्तिक छोकड़ेको अपने कालेजसे निकाल दिया। लेकिन पीछेके लोग ऐसे कपूत हुए कि, उन्होंने उस नास्तिककी यादगारमें शेली स्मारक बनवाया। इस विषयमें नालन्दा अच्छा था, जिसने धर्मकीर्त्ति, चन्द्रकीर्त्ति जैसे ख़ुदा और बाइबिल (वेद) के घोर विरोधियोंको भी पहले हीसे अपने शिरका मुकुट बनाया। हाँ, आजकी भाँति उस वक़्त भी आक्स-फ़ोर्डमें मद्यपान जहाँ गुनाह नहीं समझा जाता था, वहाँ नालन्दाने इस गुनाहको अक्षन्तव्य समझकर महाकवि *सरहको आठवीं शताब्दीमें निकाल दिया था।

आक्सफ़ोर्डकी प्रधान सड़क हाई स्ट्रीटसे थोड़ा पूर्व चलनेपर एकजामिनेशन स्कूल (परीक्षा-विद्यालय) है। यह कोई उतनी पुरानी संस्था नहीं है। जब हम इससे निकलकर शेरवेल नदी-की ओर जा रहे थे, तब मध्यान्होत्तर भोजनका समय था। विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियोंका प्रवाह बड़े वेगसे अपने-अपने भोजन-स्थानकी ओर जा रहा था। उनमें कुछ अपनी साइकिलों और मोटर साइकिलोंपर जा रहे थे; और, कुछ पगडंडीसे पैदल। हम इस आँधीके निकल जानेके ख़्यालसे वनस्पति-उद्यानके सामने थोड़ी देरके लिये रुक गये। यह वनस्पति-उद्यान भी दर्शनीय वस्तु है। यह इङ्गलैंडका प्राचीनतम वनस्पति-उद्यान १६२१ ई०में, अर्थात् जिस वक्त भारतमें जहाँगीर राज्य कर रहे थे, स्थापित हुआ था।

रास्ता जरा साफ़ होनेपर हमने सड़कसे पार किया और,

*सिद्ध सरहपा: चौरासी सिद्धोंमेंसे अन्यतम।

फिर, मेडलिन् कालेज (Magdalen College)में प्रविष्ट हुए। इसका उत्तुङ्ग घंटाघर बहुत दूरसे दिखायी पड़ता है। आक्सफ़ोर्डके कालेजोंमें यह सुन्दरतम समझा जाता है। यह सबसे ज्यादा धनी भी है। इतिहासकार गिबन् इसीके विद्यार्थी थे। इङ्गलैंडके वर्त्तमान युवराज भी इसीके विद्यार्थी रहे हैं। यहाँका पुस्तकालय सुनहरे, हस्त-लिखित तथा पुराने छपे ग्रन्थोंके लिये प्रसिद्ध है।

हमें सबसे प्रबल इच्छा थी, आक्सफ़ोर्डके विश्वविख्यात बोडलियन पुस्तकालय देखने की। इसलिये क्वीन्स कालेज और आल-सोल्स कालेजको देखते हम उधरकी ओर गये। हाँ, यह कहना भूल गये कि, क्राइस्ट चर्चसे निकलते ही हमारे पास एक गाइड आया। शायद एक या दो जगह उसे कालेजवालोंने भीतर नहीं जाने दिया। बाक़ी वह सब जगह हमें ले गया। पुस्तकालयके पहले हमें एक गोल इमारत मिली, इसे केमरा या रेडक्लिफ-केमरा कहते हैं, डाक्टर रेड्क्लिफने १७३७-४६ ई०में इसे पुस्तकालयके लिये बनवाया था। आजकल यह बोडलियन लाइब्रेरीका वाचनागार है। इसमें मेम्बर ही पढ़नेके लिये जा सकते हैं; तो भी एक किनारेसे इसे देखा जा सकता है। देखनेके बाद हम छतपर चले गये। छतके चारों ओर फिरनेका रास्ता है। वहाँसे आक्सफ़ोर्ड शहरका दृश्य बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है।

अब हम उतरकर बोड्लियन् लाइब्रेरीमें गये, जो पास ही में, उत्तर तरफ़ है। बाहरसे देखनेमें नहीं मालूम होता कि, यह वही विश्वविख्यात पुस्तकागार है। पुराने मकानोंके ऐतिहासिक महत्त्वकी रक्षाके लिये अधिकारियोंने भरसक कोई परिवर्तन नहीं किया है। वैसे जगहें सभी बहुत ही साफ़ हैं। सीढ़ीसे ऊपर चढ़कर पहले हम उस कमरेमें गये, जहाँ पुराने ग्रंथकारों

और प्रतिष्ठित पुरुषोंके हस्तलेख, कितने ही हस्तलिखित ग्रंथ तथा चित्र प्रदर्शित किये गये थे। हस्तलेखोंमें एक सम्राट् पंचम जार्जके हाथका भी है। इसे उन्होंने ५ या ६ वर्षकी अवस्थामें लिखा था। पुराने ग्रन्थकारोंके हस्तलेखोंको देखकर हमारे मनमें ख्याल उठने लगा कि, हम हिन्दी भाषा-भाषियोंको अभी कितना आगे चलना है! हमारे यहाँ हिन्दू विश्वविद्यालय, नागरी-प्रचारिणी सभा जैसी संस्थाओंको यह काम अपने हाथमें लेना चाहिये। यदि बहुत पुराने नहीं, तो उन्नीसवीं सदीके उत्तरार्द्धके भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद, स्वामी दयानन्दसे लेकर पण्डित बालकृष्ण भट्ट, द्विवेदीजी, पं० पद्मसिंह शर्मा आदि सैकड़ों दिवंगत और वर्त्तमान् हिन्दी-साहित्यसेवियोंके हस्तलेख तो जमा किये जा सकते हैं। राजनीतिक और धार्मिक नेताओंके भी हस्तलेख इसमें सम्मिलित किये जा सकते हैं। याद रहे, समकालीन या अचिरपूर्वकालीन पुरुषोंके हस्तलेखोंको संग्रह करना सुलभ है। पीछे वह दुष्प्राप्य हो जाते हैं। कोशिश करने-पर तीन-चार सौ वर्षके पुराने महापुरुषोंके भी कितने ही हस्तलेख, यदि मूल प्रतिके रूपमें नहीं, तो फोटोके रूपमें प्राप्त हो सकते हैं।

उस कमरेसे निकलकर हम संस्कृत-विभागमें गये। पुस्तका-ध्यक्ष महाशयने बड़ा ही सौजन्य प्रदर्शित किया। मैं संस्कृतके कुछ विशेष हस्तलिखित ग्रन्थोंको देखना चाहता था, उन्हें उन्होंने बड़ी तत्परतासे खोजकर दिखलाया। नेपालके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री स्वर्गीय महाराज चन्द्र शमशेरने कितने ही हस्तलिखित ग्रन्थ इस पुस्तकालयको दिये थे। मैं यह देखना चाहता था कि, उनमें कुछ बौद्ध-ग्रन्थ हैं या नहीं। अभी उन पुस्तकोंका नाम, छपे सूचीपत्रपर नहीं आया था। पुस्तकाध्यक्षने अपने कामके लिये बनाये लिखित सूचीपत्रको ही नहीं दिया; बल्कि कुछ पुस्तकोंको

खोजनेमें भी प्रसन्नता-पूर्वक पौन घंटेका समय लगा दिया। मैंने इस तकलीफ़के लिये जब उनसे क्षमा माँगी, तब उन्होंने कहा—"कोई बात नहीं, आप इतनी दूरसे आये हैं; और, मेरा तो यह कर्त्तव्य है।" भारतीय पुस्तकालयोंमें विशेष परिचय बिना बहुत कम लोग इतना कष्ट उठानेके लिये तैयार होंगे। पुस्तकोंकी रक्षाके लिये जैसा प्रबन्ध किया गया है, उसे देखकर चित्त प्रसन्न हो गया। ज़रा-ज़रा-सी चिटको बड़े ही यत्नसे, और सुरक्षित आवरणके साथ, रखा गया है। वहाँ और ब्रिटिश म्युज़ियममें पुस्तकोंकी रक्षाके प्रबन्धको देखकर पहलेसे मुझे बड़ा ही आदर-भाव हो गया था। इधर एक ऐसी घटना मुझे मालूम हुई, जिसे उन महानुभावोंके लिये यहाँ उद्धृत करता हूँ, जो कहा करते हैं कि, चाहे कुछ भी हो, देशकी प्राचीन पुस्तकें और दूसरी वस्तुएँ बाहर नहीं जाने देनी चाहिये।

कोई दो वर्ष हुए, जुलाई १९३१ ई०में काश्मीर राज्यके गिलगित स्थानमें छठी-सातवीं शताब्दियोंके हस्तलिखित बौद्ध संस्कृत-ग्रन्थोंका एक भरा सन्दूक़ किसी पुराने स्तूपसे निकल आया। पता लगनेपर रियासतके वज़ीरवज़ारत या कमिश्नरने गाँव-वालोंके हाथसे उन पुस्तकोंको अपने यहाँ मँगवा लिया। स्मरण रखिये, १३, १४ सौ वर्ष पुरानी होनेसे वैसे ही ये पुस्तकें अनर्घ रत्न हो गयी थीं, दूसरे उनमें कुछ ऐसी पुस्तकें थीं, जिनका अब तिब्बती और चीनी भाषाओंमें अनुवाद-मात्र मिलता है। कुछका तो अनुवाद या संस्कृत मूल, कुछ नहीं मिलता। अच्छा, उन पुस्तकोंके साथ हमारे देशवासियोंने क्या सलूक किया? वह पुस्तकें वज़ीरवज़ारतके आफ़िसमें और काग़ज़ोंकी तरह रख दी गयीं; और पुराने आफ़िशियल ढंगसे लिखा-पढ़ी शुरू हुई। श्रीनगरके अधिकारीके लिखनेपर उनमेंसे भोजपत्रपर लिखी कितनी ही पुस्तकें श्रीनगर भेज दी गयीं! बाक़ी दो साल बाद भी

वहीं रखी हैं। और, रखी कैसे हैं ? न उनकी कोई लिस्ट है, न कोई प्रबन्ध। यार-दोस्तोंमें उनके पन्ने, प्रसादीके तौरपर, बाँटे गये हैं। इस प्रसादीमेंसे जो कुछ पर्चे एक दो यूरोपीय विद्वानोंके हाथमें आये, वह तो सुरक्षित रखे ही नहीं गये; बल्कि उनमेंसे कितने ही छाप भी दिये गये। लेकिन जो पर्चे तबरुकके तौरपर उनके मोलसे अनभिज्ञ पुरुषोंको दिये गये, अब क्या उनके मिलनेकी कोई आशा हो सकती है ? श्रीनगरके पत्रोंको मैंने देखा है। उन्हें बाज़ारू चीज़ लपेटनेवाले मोटे काग़ज़में लपेटकर रखा गया है; और, बेपरवाहीसे उन्हें उल्टा-पल्टा जाता है, जिसके कारण कुछ चूर-चूर हो गये। इन्हें मैंने अपनी आँखोंसे देखा। गिलगितमें अब तक पड़े काग़ज़ और भोजपत्रपरके ग्रन्थोंपर क्या बीतती होगी, इसका अनुमान करनेपर भी चित्त विचलित हो उठता है।

प्रसिद्ध पुरातत्ववित् सर आरेल स्टाइन् संयोगवश उसी वक्त गिलगितकी ओरसे जा रहे थे। पुस्तकोंको देखकर उनके महत्त्व-पर उन्होंने बाहरी दुनियाको इसकी सूचना दी। उन्होंने पुस्तकोंके भविष्यसे भयभीत होकर कोशिश की कि, पुस्तकें भारत सरकारके पुरातत्त्व विभागको दे दी जायँ; किन्तु इस बातको राज्य कब सुनने लगा ?—हालाँ कि, राज्यका खर्च घटानेके लिये पहला प्रहार पुरातत्त्व-विभागपर ही किया गया—बल्कि उसे जड़मूलसे ही उड़ा दिया गया। बतलाइये कि यह कैसा अमानुषिक अत्याचार उन अनर्घ पुस्तकोंपर, (जिन्हें कि १३, १४ शताब्दियोंके सुदीर्घ कालने भी पीड़ा नहीं पहुँचायी) हुआ है ! क्या इससे यह अच्छा नहीं होता कि, वह देश या विदेशकी किसी भी ऐसी संस्थाके हाथमें जातीं, जहाँ ब्रिटिश म्युज़ियमकी तरह आधे इंचके टुकड़ोंको भी, दोनों ओर काँचकी पट्टियाँ लगाकर रखा जाता है ! इन पुस्तकोंके साथ जो बर्ताव

हुआ है, उसे देखकर आँखोंमें आँसू आता है। फ्रांसके महा-विद्वान् आचार्य लेवी और फूशे भी इस आशंकासे मेरी ही तरह दु:खित हो रहे थे। मैंने अपने देशवासियोंके इस अत्याचारसे अतीव लज्जित होकर अभी तक आचार्य लेवीके पुस्तक सम्बन्धी प्रश्नोंका उत्तर तक नहीं दिया!

यद्यपि आक्सफ़ोर्डके वर्णनमें यह बात अप्रासंगिक-सी मालूम होगी; किन्तु बोडलियन् लाइब्रेरी जैसी पाश्चात्य देशोंको संस्थाओंके महत्त्वको आप समझ न सकेंगे, जब तक ऐसी घटनाओंका भी आपको ज्ञान न हो।

बोडलियन् पुस्तकालयमें प्राय: १॥, २ घंटे बीते। चित्त बड़ा ही प्रसन्न हुआ। वहाँसे निकलकर बेलियोल, ट्रिनिटी आदि कुछ और कालेजोंको देखा। इंडिया इंस्टिट्यूट उस समय बन्द था; इसलिये उसकी इमारतको बाहरसे ही देखा। इसमें भार-तीयताकी जानकारीके लिये कितनी ही चीजें संगृहीत की गयी हैं। अन्तमें विश्वविद्यालय संग्रहालय देखने गये। देखते हुए जिस वक्त हम तिब्बती चीज़ोंके स्थानपर पहुँचे, उस समय वहाँ तिब्बतके मठीय विश्वविद्यालयके छात्रोंके उन पीले रंगकी विचित्र टोपियों और गौनोंको देखा, जो आक्सफ़ोर्डके छात्रोंकी काली चौकोर टोपियों और गौनोंसे बहुत बातोंमें मिलती हैं।

सभी कालेज ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं। थोड़ेमें छः हज़ार विद्यार्थियोंवाले इस विश्वविद्यालयका क्या वर्णन हो सकता है? इसमें भी जब लेखककी प्रकृति बात-बातमें अपने यहाँकी चीज़ोंकी तुलना करनेपर तुल जाय? संक्षेपमें यही समझिये कि, जिस बेलियोल कालेजके छात्र ऐडम् स्मिथ जैसे राजनीतिक अर्थशास्त्री, मेथ्यु अर्नाल्ड, स्विन्बर्न, एंड्युलाङ् जैसे कवि, लार्ड कर्ज़न, लार्ड मिलनर, वाइकौंट ग्रे, लार्ड आक्सफ़ोर्ड (मिस्टर आस्किथ)

जैसे राजनीतिज्ञ हों, उसके प्रति उस देशवासियोंका क्या भाव होगा ? आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज अंग्रेज जातिको जितनी किताबोंकी पढ़ाईसे शिक्षा देते हैं, उससे कई गुना ज्यादा अपने इतिहास, अपने ईंट-पत्थरों और अपने सजीव वायुमण्डलसे देते हैं।

अँधेरा होनेपर हम लोग स्टेशन पहुँचे और वहाँसे रेलपर चढ़कर ७॥ बजे लन्दनके अपने बौद्धविहारमें आ गये।

१०

पेरिसमें

चौदह नवम्बरको ग्यारह बजे लन्दनसे विदाई ले मैं पेरिसको रवाना हुआ। उस दिन चारों ओर कुहरा फैला हुआ था। टिकट द्वितीय श्रेणीका था। कितने ही मित्र स्टेशन तक पहुँचाने आये थे। आज डोवर और केलेके रास्ते जाना था। कुछ दूर चलनेके बाद कुहरा कम होने लगा। डोवरके पास पहुँचनेसे पूर्व ही बाईं ओर पथरीली पहाड़ियाँ दिखाई पड़ीं। इङ्गलैंडके गाँव फ्रांस और जर्मनीकी भाँति सुन्दर नहीं हैं। बारह बजेके बाद जहाजपर पहुँचे। आज समुद्र उतना चंचल न था। दूसरे पार केलेमें रेलपर सवार हुए। ६ बजे अँधेरा हो जानेके बाद पेरिसकी गार-द-नोह (उत्तरी स्टेशन)पर उतरे। प्लेटफार्मपर आते ही, मेरे पीले कपड़ोंसे मिस लून्जबरी (सभापति) और मदाम लाफ़्वाँ (मंत्री)ने पहचान लिया। मैं अपने साथ तिब्बती चित्रपटोंकी पेटी भी लाया था। उसे अभी कस्टम्‌में दिखलाना था। उस दिन समय न होनेसे कस्टम्‌वालोंने दूसरे दिनके लिये रख छोड़ा। मदाम् लाफ़्वाँके मोटरमें रु-मदामके ओ तेल् द-ल् आवे नीरमें पहुँचा। यहीं मेरे ठहरनेका प्रबन्ध किया गया था।

सर्दीका मौसम था, किन्तु गर्म किये मकानोंमें प्रविष्ट होना सर्दीके मानकी बात न थी। कमरा स्वच्छ और प्रशस्त था; साथ

ही स्नानागार भी था। नहानेका इतना आनन्द देखकर मैंने *अन्तरियाकी जगह नित्य स्नान करनेका नियम कर लिया। होटलका किराया मेरे मेजबानोंको देना था, इसलिये पूछ न सका, तो भी ३०, ३५ फ्रांक (५, ६ रुपए) रोजसे क्या कम होगा। सबेरेका जलपान होटलकी ओरसे था, मध्यान्ह भोजन मिस लून्जबरीके घरपर होता था, जो एक मिनटके रास्ते ही पर लुक्समबुर्ग प्रासादके पास था।

१५ नवम्बरको ३ बजे मिस लून्जबरी और मदाम् लाफ्वाँके साथ मुजी-ग्विमे गया। भारत, हिन्दू-चीन, आदि पूर्वके देशोंकी पुरानी चीजें यहीं रखी हुई हैं। तिब्बतीय चित्रपटोंका भी अच्छा संग्रह है जो यूरोपमें यह संग्रह सर्वोत्तम है। यहाँ आचार्य पेलियों द्वारा लाये मध्य एशियाके चित्रोंका भी संग्रह है। बर्लिनके ला काँक संग्रहके बाद यह सबसे अच्छा है। सबसे तो अधिक चित्त तब प्रसन्न हुआ जब शाह अमानुल्लाके शासन कालकी खुदाईमें हड्डा, बामियाँ आदिसे निकली चूने आदिकी मूर्त्तियों और चेहरेको देखा। इनकी खोदाई आचार्य फूशेने करायी थी। यह संग्रह सारे भूमण्डलमें अपने ढंगका अद्वितीय है—इनमें उस समय गंधार देशमें आनेवाली नाना जातिके पुरुषों—उनकी नाक, ओठ, चेहरा, केश आदि—को सजीवताके साथ मिट्टी चूनेपर उतारा गया है। आचार्य फूशे कह रहे थे—खोदाईमें जब यह चीजें निकल आइ, तो हमारे आनन्दकी सीमा न थी। हम छोटी-छोटी उठाने लायक़ चीज़ोंको अपने डेरेमें रखते जा रहे थे। फिर उन्होंने ठंढी साँस भरकर कहा—किन्तु, मौलवियोंने इन मूर्त्तियोंके खिलाफ़ ऐसी उत्तेजना पैदा कर दी थी कि, रातको आस-पासवाले, सैकड़ों मनुष्य चढ़ आये; और,

---

*एक-एक या दो-दो दिन बाद नहाना।

अफ़सोस ! कलाके उन अनुपम नमूनोंको क्रूरताके साथ तोड़ने लगे ! हम आह भरी आँखोंसे उनकी इस दानवी लीलाको देखते रहे। कोई भी धर्म जो मनुष्यके हृदयमें ऐसा भाव पैदा कर सकता है, वह मानवजातिके लिये अभिशाप है !

१६ नवम्बरको आचार्य सिल्वें लेवीसे मिलनेका निश्चय था। दो बजे हम उनके मकान (9. Rue Guyede la Bruma) पर पहुँचे। सीढ़ीपर चढ़ते-चढ़ते तरह-तरहके भाव पैदा हो रहे थे। पैदा होने ही चाहिये; क्योंकि हम प्राचीन भारतके विषयमें, भूमण्डलके सबसे बड़े विद्वान्के पास जा रहे थे। देवी लेवीके दर्शन पहले हुए। उन्होंने आचार्य श्रीको सूचित किया। थोड़ी ही देरमें आचार्यके साथ हम उनके कमरेमें थे। अस्सी वर्षके क़रीबका, पतला किन्तु स्वस्थ शरीर। सारे बाल सनकी तरह सफ़ेद थे। यहूदी जातिके नर-नारियोंकी भाँति आप शुकनास थे। स्मित मुख, विकसित ललाट, चमकती आँखोंसे स्नेहकी किरणें चारों ओर फैल रही थीं। शिष्टाचारकी बातें, जो और जगह भी साधारण हैं, उसे लिखकर मैं वास्तविकताके महत्त्वको कम करना नहीं चाहता। मैं बक्ससे एक पुस्तक निकालकर खड़ा हो दिखा रहा था, उस समय आपके मुखसे जो शब्द निकले— Please be seated (कृपया, बैठिये) वह अपने स्वर, विराम, उच्चारण आदिमें अपार स्नेहके भावोंको रखता था। आचार्य लेवी वस्तुतः मोह लेनेमें जादूगर (=यातुधान वैदिक अर्थमें) हैं। इन ज्ञान वयोवृद्ध महापुरुषके दर्शन फिर होंगे, नहीं कह सकता; किन्तु पेरिसमें उनकी मुलाकातकी स्मृति आजन्म न भूलेगी। दो बजेसे छः बजे शाम तक पूरे चार घंटे अतृप्त हो हमारा वार्त्तालाप होता रहा। वहाँ ज्ञानका पारावार हमारे सामने तरंगित हो रहा था। एक बार प्रकरणवश मैंने कहा—और हृदयसे कहा—आरम्भसे ही विद्याके पथपर अग्रसर

होते वक्त, आप ही मेरे आदर्श थे। उन्होंने कहा—क्या कहते हो, मैं तो इतना ही जानता हूँ कि, मैं कुछ नहीं जानता। यह ध्रुव सत्य था। आदमीकी विद्या क्या है—जितना ही वह अधिक पढ़ता है, उतना ही उसे यह स्पष्ट अनुभव होने लगता है कि, वह क्या-क्या नहीं जानता। विद्या होनेपर पुरुष वैसे ही है, जैसे कोई आदमी आस-पास मीलों गहरे खड्डोंवाला एक छोटी-सी टिब्बीपर बैठा है। अँधेरेमें उसे अपनी स्थितिका ज्ञान कुछ नहीं होता; किन्तु जैसे ही प्रकाश आता है, वह अपने आस-पासके उन खड्डोंको अनुभव करने लगता है; लेकिन हमें यह अर्थ नहीं निकालना चाहिये कि, विद्याका पढ़ना ही निरर्थक है। यह समझकर कि कोई सर्वज्ञ नहीं है, अपने ज्ञानके क्षेत्रको बढ़ाते हुए भी हमें एक दूसरेकी सहायताको सत्कारपूर्वक लेनेके लिये तैयार रहना चाहिये। सामूहिक ज्ञानसे हम अपनी बहुत-सी कमियोंको पूरा कर सकते हैं।

आचार्य श्रीके साथ जिन विषयोंपर वार्त्तालाप हुआ, उसे यहाँ लिखनेकी आवश्यकता नहीं। यद्यपि वह हम दोनोंके लिये बहुत ही सरस और आनन्दकर थे, तो भी हमारे पाठकोंमेंसे अधिकांशके लिये वह नीरस ही होंगे। आचार्य, संस्कृत, पाली, प्राकृत, भारतकी अनेक आधुनिक भाषाओं, तिब्बतीय, चीनी तथा यूरोपकी बहुत-सी भाषाओंके आचार्य हैं। चीनी, तिब्बती, पाली संस्कृत ही नहीं; बल्कि मध्य एशियाकी लुप्त भाषाओंमें भी प्राप्त बौद्ध साहित्यके आप सर्वतोमुखी पंडित हैं। भारतमें आप कई बार आ चुके हैं और कितने ही भारतीय आपके शिष्य हैं। प्राचीन भारतके इतिहासके कितने ही भव्य और शताब्दियोंसे विस्मृत अंशको सभ्य दुनियाके सामने लानेमें आपने वह काम किया है, जिसे भारतीय और भारतप्रेमी कभी न भुला सकेंगे।

गिल्गितमें निकले प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथों—जिनके बारेमें आक्सफोर्डके प्रकरणमें लिख चुका हूँ—के बारेमें प्राप्त पृष्ठोंके सहारे आप जूर्नाल-आसियातिकमें एक सचित्र गवेषणापूर्ण लेख लिख चुके हैं। उस बारेमें वह मुझसे भी अधिक उत्सुक थे। पेरिसमें भी उनकी खोज लेनेके लिये मुझे प्रेरित किया था और पीछे भारत लौटनेपर पत्र द्वारा भी प्रेरित किया। मैं कश्मीर आया, वहाँ जो हुआ, उसे मैं संक्षेपमें लिख चुका हूँ। उसे पढ़कर आचार्यको क्षोभ अवश्य होगा। उन्होंने उन ग्रंथोंकी रक्षा और प्रकाशमें लानेके लिये मालवीयजीको एक पत्र मेरे द्वारा भिजवाया था। बड़े आदमियोंसे डरनेवाला मैं स्वयं तो नहीं गया; किन्तु डाकद्वारा पत्रको मालवीयजीके पास भेज दिया, जिसका उत्तर मुझे कुछ नहीं मिला। गंगाके पुरातत्त्वांकके लिये "महायानकी उत्पत्ति", "मंत्रयान, वज्रयान चौरासी सिद्ध"पर दो लेख लिखे थे। मैंने अंग्रेजीमें अनुवादकर पहले लेखको तो लंदनसे ही भेजा था, जिसे आचार्यने अपने जूर्नाल्-आसियातिकमें प्रकाशित करनेकी इच्छा प्रकट की थी। दूसरा अब साथ लाया था; दोनोंको उन्होंने ले लिया। हमारे वार्त्तालापके बीचमें एक बार देवी लेवी भी आई थीं। वह १६२१-२२ (?)में अपने पति देवके साथ भारत आई थीं। उस वक्त उन्होंने फ्रेंचमें "सीलोनसे नेपाल" नामक अपनी यात्रा लिखी थी। उसे मैं पढ़ चुका था, इसलिये उनके सहानुभूतिपूर्ण हृदयसे पूर्णतया परिचित था। बीचमें आचार्यके बड़े पुत्र आये, पिता द्वारा पुत्रका ललाट-चुम्बन बड़ा ही मधुर दृश्य था। दूसरे दिन सोरबोन आनेका वचन देकर मैंने विदाई ली।

हमारे वार्त्तालापके समय ही गोवानिवासी श्री बर्गन्सा वहाँ आ गये। उन्होंने मुझे अपने स्थान तक पहुँचानेका कष्ट उठाया।

आपको यूरोप आये १६, १७ साल हो गये। मराठी आपकी मातृभाषा है। आपका वंश आंध्रसम्राट् शातकर्णि या शातवाहनों-से सम्बन्ध रखता है। पोर्तुगीजोंके गोवापर अधिकार जमानेके बाद आपका वंश भी औरोंकी भाँति ईसाई हो गया। अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, इटालियन आदि यूरोपकी भाषाओंको आप अनायास सुन्दर रीतिसे बोलते हैं। पिछले छ:-सात वर्ष आप रूसमें ही रहे। निडर भविष्यचेता होते भी आप भारतीय संस्कृति-का बड़ा सन्मान रखते हैं। भारतकी कई आर्य भाषाओंके अति-रिक्त आप संस्कृत और पाली भी जानते हैं। इस वक्त आप भारतीय नृत्यकलापर एक सुन्दर ग्रंथ फ्रेंच भाषामें लिख रहे हैं। "भारत नाट्यशास्त्र", और "संगीत-रत्नाकर" नामक संस्कृत ग्रंथोंमें भारतीय नाट्यपर काफ़ी लिखा गया है। भारत नाट्य-शास्त्रमें तो चार-पाँच सौ श्लोकोंमें नाट्यका सविस्तार वर्णन है। इनसे पहले भी मैं उन ग्रंथोंको देख चुका था; किन्तु मालूम होता है, उन प्रकरणोंको विषयके परिचय न होनेसे छोड़ दिया था। कितनी ही बार श्री बर्गन्सासे मिला, किन्तु पहले शायद संकोच-वश उन्होंने कुछ नहीं कहा। *परी छोड़नेसे चार-पाँच दिन पूर्व २५ नवम्बरको कहा, इन ग्रंथोंके कुछ अंशोंके अर्थ जाननेमें मैं आपकी सहायता चाहता हूँ। मैंने सहर्ष स्वीकृति देते कहा—मैं तो सिर्फ़ शब्दार्थमें ही सहायता कर सकूँगा। हाँ, हो सकता है, आपके नाट्यज्ञानके मिलनेसे भाव स्पष्ट हो जायँ। हाँ तो, श्री बर्गन्सा पाश्चात्य नाट्यकलाके अच्छे अभिज्ञ हैं; और, आपकी पत्नी तो मास्कोकी एक निपुण नटी हैं। २६ से २६ नवम्बर तक हम दोनों मिलकर उक्त दोनों ग्रंथोंके अभिलषित अंशोंको पढ़ते रहे। उस समय उनके मुखसे यह भी पता लगा कि, यूरोपके उच्च

*पेरिसका फ्रेंच उच्चारण।

कोटिके नृत्योंमें भी वे यही "करण" (=हाथ-पैरकी विशेष गतिसे नृत्य प्रदर्शनकी मूल इकाई) आदि हैं और पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दियोंमें यूरोपने पूर्वसे इस विषयकी बहुत-सी बातें सीखी हैं। श्री बर्गन्साकी पुस्तक, जिस समय (३१ जुलाई १६३३ ई०)में इन पंक्तियोंको लिख रहा हूँ, इस वक्त तक छप गयी होगी। उनसे मैंने कहा था कि, उसका मराठीमें भी अनुवाद कर डालें। मराठी अनुवाद छप जानेपर किसीको उसका हिन्दी अनुवाद जरूर करना चाहिये।

आज ६ बजे रातको बौद्ध मित्र मंडल (L' Amis du Buddhisma)में मेरा व्याख्यान हुआ। विषय था "पूर्वमें बौद्ध-धर्मकी जागृति", साथ-साथ फ्रेंच अनुवाद भी होता जाता था। मित्र मंडलीमें सभी शिक्षित तथा ऊपरी श्रेणीके नर-नारी हैं। आज यह भी निश्चय हुआ कि, चित्रपटोंकी प्रदर्शनी मुजी-ग्विमेमें की जाय। तैयारीमें कुछ समय भी लगेगा, इसलिये २६ नवम्बर तक यहीं रहना निश्चय हुआ।

१७ नवम्बरको बर्गन्सा महाशयके साथ पेरिसके सबसे बड़े पुस्तकागार बिब्लियोथिक्-नाश्नाल (Bibliothic Nationale)में गये। अपने वज्रयानवाले लेखको वहाँ कुछ पुस्तकोंसे मिलाना था। बिना विशेष सिफ़ारिशके इस पुस्तकालयमें प्रवेश मुश्किल है। लेकिन वह काम आचार्य लेवीने कर दिया था। कई तलोंवाले एक विशाल भवनमें, संसारके तीन महान् पुस्तकालयोंमेंसे अन्यतम यह पुस्तकागार स्थापित है। फ्रेंच जातिके विद्या-प्रेमका यह ज्वलंत उदाहरण है। वहाँ मुझे तिब्बती स्तन्-ग्युरकी एक पोथीसे काम था। देखा, पुस्तक पे-किङ्के लकड़ीके छापेकी है और लम्बे चौकोर बक्सोंमें अलग-अलग सुरक्षित रखी हुई है।

वहाँसे तीन बजे सोरबोन (पेरिस विश्वविद्यालय) गये। आचार्य लेवी, आचार्य फूशे, और उनके शिष्य वहाँ मौजूद थे। वहाँ चौरासी सिद्धोंके बारेमें ही मैंने कुछ कहा। वहीं श्वेत केश-श्मश्रुधारी एक वृद्ध पुरुषके दर्शनका सौभाग्य हुआ। आचार्य लेवीने मजाक करते हुए कहा—आप काम शास्त्रके विशेषज्ञ हैं! पीछे मुझे सर्दार उमरावसिंहसे बातचीत करनेका मौक़ा मिला। आप पंजाबके रहनेवाले हैं। ४ वर्षसे इधर ही रह रहे हैं। आपके साथ सर्दारिनी भी आई थीं; किन्तु अब वह भारत लौट गई थीं। उनकी कन्या यहीं शिक्षा ग्रहण कर रही हैं; इसलिये सर्दार साहेब यहीं ठहरे हुए हैं।

१८ नवम्बरको लूव्रे प्रासादमें फ्रान्सके महान संग्रहालयको देखने गया। सिर्फ़ ग्रीस (यवन) मूर्त्तियोंको ही देखनेके लिये महीनों चाहिये। यवन-कलाके इन भव्य नमूनोंको देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। नाना प्रकारके चीनी बर्तनोंको भी कई बड़े-बड़े कमरोंमें प्रदर्शित किया गया है। फ्रांस सरस्वतीकी आराधनामें यूरोपकी सब जातियोंमें ज्येष्ठ है। किन्हीं विषयोंमें जर्मनी इससे श्रेष्ठ है और किन्हींमें यह जर्मनीसे। इंग्लैण्ड हर बातमें तीसरे ही नंबरपर रहेगा। इस संग्रहालयमें आपको ईरान, असुर, मिश्र आदि देशोंकी अनेक पुरातन चीज़ें और कलाके नमूने मिलेंगे। यहीं मूर्त्तियोंकी प्रतिकृति बनानेका भी प्रबन्ध है। आप जिस मूर्त्तिकी प्रतिकृति लेना चाहें, वहाँसे बनवा सकते हैं।

प्रोफ़ेसर दुर (Durr) 'वद्-दो-थोस् ग्रोल्' नामक तिब्बती पुस्तकका फ्रेंच अनुवाद कर रहे थे। यूरोपके लोग विद्याके काममें एक दूसरेकी सहायताके महत्त्वको समझते हैं। चाहे स्वयं अच्छा जानते हों, तो भी दूसरेकी सहायतासे लाभ उठानेके लिये उत्कंठित रहते हैं। प्रोफ़ेसर दुरने कुछ सहायता चाही; मैंने प्रसन्नता-

पूर्वक स्वीकार किया। वह बराबर उसके लिये आते रहे। पेरिसमें मैंने देखा, तिब्बती जैसी अपरिचित भाषाके भी दर्जनों जानकार हैं। कुमारी लालू बिब्लियोथिक् नाश्नालमें काम करती हैं। तिब्बती चित्रोंके एक संग्रहका सचित्र सुन्दर सूचीपत्र बनाया है, जिसकी एक प्रति उन्होंने कृपाकर मुझे भी प्रदान की। मुजी-ग्विमेके आचार्य बकोने एक तिब्बती-संस्कृत कोशको प्रकाशित कराया है। नवयुवकों और नवयुवतियोंके विद्या-प्रेमको देखकर आश्चर्य होता था। २१ नवम्बरको मेरे पास एक १८ वर्षका तरुण आया। वह इस वर्ष बी० ए०के अन्तिम वर्षमें था। उसका पिता पेरिसके श्वेत-रूसी समुदायसे सम्बन्ध रखता है। रूसी और फ्रेंचके अतिरिक्त यह अंग्रेजी, जर्मन, इटालियन, स्पेनिश, पोर्तुगीज़ भाषाओंको जानता था। कुछ अरबी और फ़ारसी भी समझता था। इस वक्त पाली पढ़ रहा था। उसका पिता पेरिसका एक अच्छा गन्धी (—सुगन्धियोंका व्यापारी) था। एक दूसरी आफ़तकी परकाला लड़की कुमारी सेलूवर्न सोर्बोन्में मिली, यह संस्कृतकी छात्रा है और कालेजसे अन्तिम वर्षोंमें बौद्धदर्शन उसका विषय है। दिङ्नागकी बड़ी भक्त है। योगाचार दर्शनपर मुझसे बातचीत कर रही थी। वहीं एक दूसरे विद्यार्थीने बौद्धदर्शनपर चर्चा करते हुए कहा—कार्य-कारणके नियमको अचल माननेपर कर्त्ता स्वतंत्र कैसे रहेगा?—मैंने कहा—चेतनाका अर्थ ही है विचारोंकी स्वतंत्रता।

२२ नवम्बरको मेरे चित्रपटोंकी प्रदर्शनीका उद्घाटन हुआ। उसी दिन सोर्बोन्के पास मुझे एक मिश्रदेशीय तरुण महाशय गलाल (जलाल) मिले। बड़े प्रेमसे मुझे अपने निवास-स्थानपर ले गये। वह बड़े ही साधारण तौरसे रहते थे। मैंने उनसे पूछा कि, आपका खाना, मकान आदिपर महीनेमें कुल कितना खर्च आता है। हिसाब करनेपर मालूम हुआ ६०० फ्रांक।

६०० फ्रांकका मतलब है, जब रुपया और काग़ज़ी पौण्डका गंठजोड़ा नहीं हुआ था, उस वक़्तके हिसाबसे ६० रुपयेसे भी कम। आजकलके हिसाबसे १००) मासिकके क़रीब। मुझे आश्चर्य होता है कि, भारतीय विद्यार्थी, जिन विषयोंको फ्रांस और जर्मनीमें इंगलैण्डकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह पढ़ सकते हैं, वह इसके लिये इंगलैण्ड क्यों जाते हैं ?

रूसमें बौद्ध इतिहास और संस्कृत सम्बन्धी बहुत-सी-वस्तुओं-का उत्तम सग्रह है। आचार्य चिरबासकी, आचार्य ओल्डन बर्ग, ओबर मिलर जैसे बौद्ध साहित्य और दर्शनके चोटीके पंडित भी वहाँ रहते हैं; इसलिये मेरी बड़ी इच्छा थी कि, वहाँ जाऊँ। पासपोर्ट तो ख़ैर मिल गया। अब रूसी बीसेकी आवश्यकता थी। सोवियट दूतावासमें जानेपर मालूम हुआ कि, इसमें एक मास लग जायगा। तिसपर भी मिलना सन्दिग्ध था। रूसी यात्रा प्रबंधक संस्थाके पास गया। उन्होंने कहा—एक सप्ताहमें हम प्रबन्ध कर देंगे; किन्तु रूसमें रहते वक़्त द्वितीय श्रेणीके प्रबन्धके लिये आपको १० डालर (=४० रुपये) रोज़ देने होंगे। यद्यपि १० डालरमें जो सुविधा (होटल ख़र्च, खाना-ख़र्च, म्युज़ियम सिनेमा थियेटरके टिकटोंका ख़र्च, एक टेक्सी और एक दुभाषियाका ख़र्च आदि) मिलती थी, उसके सामने यह मूल्य कुछ नहीं था। किन्तु मैं तो महीने दो महीनेके लिये जानेवाला था; फिर इतना रुपया ला कहाँसे सकता था ? मैंने रूस जानेकी इच्छासे बड़े उत्साह-पूर्वक रूसी भाषा सीखनी शुरू की थी। मुझे यूरोपकी सभी भाषाओंमें यह सरल मालूम हुई। रूसी भाषा संस्कृतसे बहुत समीप भी है। उदाहरणार्थ एतत्=*एतोत्*, *तत्=तोत्*, *द्वे=द्वे*, *द्वा*, *चत्वारि*=चेत्वेर। संस्कृतकी भाँति ओस्ति भवतिक्रिया इसमें भी छोड़ दी जाती है। इसमें अंग्रेजी की तरहके झगड़े (बड़ा ए. बी. सी., छोटा ए. बी. सी.; हिज्जेकी

अव्यवस्था आदि) नहीं हैं इसकी वर्णमाला नागरीकी भाँति पूर्ण, और जैसे लिखी जाती है, वैसे ही बोली जाती है। मदाम् लाको तीस बड़े उत्साहसे मुझे रूसी पढ़ाती थीं।

२७ नवम्बरको चित्रपटोंकी प्रदर्शिनी समाप्त हुई। यहाँ अभिज्ञोंने ख़ूब प्रशंसा की। इस बार भी श्री हेरमान्से कितनी ही बार कथा-समागमका मौक़ा मिला। उन्होंने बड़ी सहायता की।

२६ नवम्बरको तीन बजे मदाम् लाफ्वाँ परीके उपनगर और दीहातको दिखलानेके लिये मुझे अपनी मोटरपर ले चलीं। फ्रांस, जर्मनी आदि देशोंमें सड़कपर दाहिनी ओरसे चलना होता है, और इसलिये ड्राइवर मोटरमें बाईं ओर बैठता है। शहरसे निकलते वक्त अभी तीन ही बजा था, सूर्य इंगुरकी भाँति लाल था। उपवनों, और वनों, पुलों और नदियों, कितने ही गाँवोंको देखते हम वर्साइ (वर्सेलिस्) प्रासाद तक गये। मदाम् लाफ्वाँ एक बड़े ही सम्भ्रान्त कुलकी महिला हैं। बुद्ध धर्मकी बड़ी अनुरागिणी हैं। उन्होंने एक तिब्बती पुस्तकका अंग्रेज़ीसे फ्रेंचमें अनुवाद किया है, भगवान बुद्धके १५३ उपदेशोंवाले मज्झिम निकायका भी वह अनुवाद कर रही थीं। वह और कुमारी लूञ्जवरी फ़रवरीमें लंकामें आकर कितने ही मासों रही थीं। बौद्ध धर्मके प्रचारमें बड़ा ही उत्साह रखती हैं।

कुमारी लूञ्जवरी अमेरिकन हैं; किन्तु बहुत वर्षोंसे पेरिसमें ही रह गयी हैं, बड़ी ही सुसंस्कृत और भगवान बुद्धमें असीम प्रेम रखनेवाली। बुद्ध धर्मके प्रचारमें सतत् परिश्रम करती रहती हैं। उनका विचार है कि, किसी एकान्त शान्त स्थानमें, एक बौद्ध आश्रम क़ायम किया जाय, जहाँ फ्रांसके बौद्ध समय-समयपर एकान्त चिन्तन कर सकें। इनकी सहचरी, एक अंग्रेज़ महिला, जो अब फ्रांस देशवासिनी हो गयी हैं, बड़ी ही मधुर स्वभाववाली

हैं। उनका भाई भारतमें फौजी अफ़सर था। उस समय वह भारतमें आकर बहुत दिनों तक रहीं। इस वृद्धावस्थामें भी उन्हें भारतकी बहुत-सी बातें याद हैं; और, बुद्ध और उनकी मातृ-भूमिसे बहुत प्रेम करती हैं। मेरे पेरिसमें रहते मेरे भोजन आदिका बहुत ख्याल इसी देवीको रहता था।

इस प्रकार दो सप्ताहसे अधिक पेरिस नगरमें रहकर अनेक मित्रोंकी मधुर स्मृति लिये २६ नवम्बरको रात्रि सवा नौ बजे वहाँसे जर्मनीके लिये रवाना हुआ।

११

जर्मनीकी सैर

रास्तेमें जिस वक्त गाड़ी फ्रांसकी सीमा पारकर जर्मनीमें घुसी, जकात (Customs) वालेने आकर पूछताछ की। सिगरेटके लिये विशेष तौरसे पूछा! फिर पासपोर्ट देखनेवाला आया। अंग्रेजी प्रजाके लिये फ्रांस और जर्मनीमें वीसे (Visas) की आवश्यकता नहीं होती। हमारे खानेकी दोनों बेंचोंपर अकेले हमी थे; इसलिये सोनेका आराम रहा। गाड़ी फ्रांकफुर्त, १० बजे सबेरे या घंटा दिन चढ़े, पहुँचनेवाली थी। आठ बजे पह प्रभा फटने लगा; और, फिर ड्वाश्-लान्ट् (जर्मनी)की सुहावनी भूमि दिखलाई देने लगी। भूमि ऊँची-नीची तथा पहाड़ोंसे घिरी थी। लम्बे-लम्बे जुते हुए खेत और पत्रहीन नंगे वृक्षोंकी भरमार बतला रही थी कि, जर्मनी सिर्फ कारखानोंका ही देश नहीं है। जगह्-जगह, क़स्बोंमें भी, बड़ी-बड़ी चिमनियोंवाले कारखाने हैं। रेलमें मिलनेवाले दीर्घकाय हृष्ट-पुष्ट आफ़िसर फ्रांसके नफ़ासत-पसन्द दुबले-पतले शिक्षितोंसे पृथक हो रहे थे।

परीसे ही मित्रोंने, सबेरेके कलेवेके लिये, दो सेव और सैंडविच्के दो-तीन टुकड़े रख दिये थे। सैंडविच्को, सत्तूकी तरह, "बहुगुणा" भोजन समझिये। पतली पावरोटी बीचसे फाड़कर और उसमें मक्खन लगाकर एक पतली तह बैकन (सूअरके मांस)की रख दी जाती है; बस, यही सैंडविच है। इसके ऐसा नाम पड़नेका कारण यह बतलाया जाता है कि,

इंगलैंडमें लार्ड सैंडविच् नामक सामन्त हर वक्त जूए और पासेके खेलमें लगा रहता था। वह अपने खेलको छोड़कर खानेके लिए भी अधिक समय नहीं लगाना चाहता था; इसलिए नौकर खेलपर ही, उक्त प्रकारका भोजन रख देते थे। वह खेलते खेलते उसे खाता जाता था! लार्ड सैंडविच्का खाना होनेसे उसका नाम ही सैंडविच् पड़ गया।

मैं सेब और सैंडविच् खाकर तैयार था कि, १० बजे हमारी ट्रेन फ्रांकफुर्त आम् माइन् स्टेशनपर पहुँची। श्रीयुत इन्द्रबहादुर-सिंहको अपने आनेकी सूचना पहलेसे ही दे रखी थी—और, साथ ही, इस बातकी भी कि, मेरे नारंगी रंगके कपड़े दूरसे ही मालूम पड़ जायँगे! सचमुच ही, प्लाटफ़ार्मपर उतरते ही देखा, चश्मा दिये, भेंड़के खालकी सफ़ेद गांधी टोपी लगाये एक हृष्ट-पुष्ट नौजवान सामने आ खड़े हुए हैं। उनके साथ एक दूसरे सज्जन थे, जिनका परिचय इन्द्रजीने जापाननिवासी प्रोफ़ेसर कितायामा कहकर दिया। टैक्सी करके हम लोग शूमान्-स्ट्रासे गये। डाक्टर कितायामा जापानके जो-दो सम्प्रदायके बौद्ध भिक्षु हैं। १० वर्ष पूर्व, उन्हें जर्मनीमें संस्कृति और आधुनिक अन्वेषण-की विद्या सीखनेके लिये उनके मठने भेजा था। डाक्टर (Ph. D.)* होनेके बाद, कितने ही वर्षोंसे, वह मारबुर्ग और फ्रांकफुर्तके विश्वविद्यालयमें बौद्धधर्म तथा चीनी भाषाके

*Doctor of Philosophy या Doctorate in Philosophy (दर्शन-वाचस्पति)—यह उपाधि किसी विश्वविद्यालयकी तरफ़से उन्हें मिलती है जो अपनी रुचिके अनुसार कोई विषय चुनकर उसपर महान् निबन्ध लिखते हैं। यहाँ भी कलकत्ता, बम्बई, इलाहाबाद, आदिके विश्वविद्यालय योग्य विद्वानोंको अब Ph. D. की पदवी देने लगे हैं। D. Litt. (Doctor of Literature). साहित्य-

अध्यापक हैं। डा० रुदाल्फ ओतोने उन्हें खास तौरसे, मुझे मारबुर्ग लानेके लिये भेजा था।

श्रीयुत इन्द्रबहादुरके अतिरिक्त श्रीयुत ए० वसु और डाक्टर देवीलाल, दो और भारतीय यहाँ रहते हैं। तीनों ही बड़े देश-प्रेमी सज्जन हैं। वसु महाशयकी जर्मन स्त्री स्वयं Ph. D. तथा कई बड़ी कम्पनियोंके डाइरेक्टर तथा एक सम्भ्रान्त पिताकी एकलौती लड़की हैं। विदेशमें विवाह करनेवाले भारतीयोंमें अक्सर देखा जाता है कि, वह सुसंस्कृत, सुशिक्षित सम्भ्रान्त कुलोंमें शादी नहीं करते। श्रीयुत वसुका विवाह इसका अपवाद है। इन्द्रकी भाँति वसु भी खालकी गांधी टोपी पहनते हैं। इसके लिए उन्हें, एक-एक टोपीपर, तीस-तीस मार्क (३० रुपये) खर्च करने पड़े! थोड़ी देरके ही वार्त्तालापसे फ्रांकफुर्त भी घर बन गया। इन्द्रजीसे ही मालूम हुआ कि, "सत्यनारायण आजकल स्कन्धनाभीय* देशोंमें गया हुआ है। भारी घुमक्कड़ है। निबन्ध समाप्त होते ही निकल गया।"

आचार्य ओतोसे मेरा परिचय १९२७-२८में, लंकामें हुआ था। उस समय यद्यपि हमारा वार्त्तालाप दो ही घंटे हो पाया था; किन्तु तभीसे हमारी बहुत घनिष्ठता हो गयी थी। पत्र-व्यवहार

ाचस्पति; D. Sc. (Doctor of Science) : गणितवाचस्पति। आदि दर्शन महोपाध्याय, साहित्य-महोपाध्याय आदि भी कह सकते हैं।

दर्शनसे यहाँ वही दर्शन नहीं समझना चाहिए जो कि भारतीय परम्पराके 'षड्दर्शन' आदिमें रूढ़िगत दर्शन शब्दसे समझा जाता है। तर्क और युक्तिपूर्वक जिस किसी विषय पर मननशील व्यक्ति जो कुछ लिखेंगे या कहेंगे, सभी दर्शन कहलावेगा।

*स्कैन्डेनेविया—डेनमार्क, स्वीडेन, नार्वे।

ही जारी नहीं था; बल्कि एक बार तो (जब कि, मैं ल्हासामें था) उन्होंने अपना पत्र जर्मनीमें लिखकर, साथ ही ह्युगोका 'जर्मन स्वयंशिक्षक' और 'जर्मन इंगलिश कोश'—यह कहकर भेज दिया कि, 'अब वादा करनेका काम नहीं; आपको मेरे पत्रोंके लिए जर्मन सीखनी ही पड़ेगी।' मैंने इस प्रेमके बलात्कारको स्वीकार तो किया; किन्तु अधिक समय तक लगा न रहा। वस्तुत: फ्रेंचकी भाँति कितनी ही जर्मन पुस्तकोंको भी अपने कामके लिए पढ़नेकी यदि मजबूरी हुई होती, तो उसमें भी काम चलने लगता। आचार्य ओतो सत्तर वर्षसे ऊपरके हैं। संस्कृतके नामी विद्वानोंमें हैं; तो भी संस्कृतसाहित्यके बहिरंग विषयोंकी अपेक्षा, अन्तरंग विषयोंपर ही उनके अधिकांश ग्रन्थ और लेख हैं; इसीलिये थोड़े ही भारतीय, उन्हें प्राच्य-तत्त्वविशारद जानते हैं। मारबुर्ग विश्वविद्यालय (जर्मनीमें) धर्मशास्त्रके लिये सबसे प्रसिद्ध विश्वविद्यालय है। कई वर्षों तक उसके यह चांसलर रह चुके हैं। विचारोंमें यह श्रीयुत एण्ड्रूज़की तरह, अत्यन्त उदार, ईसाई हैं। योगके प्रेमी और अभ्यासी हैं।

दूसरे दिन डाक्टर कितायामाने आकर कहा कि, "आचार्य ओतो, फेफड़ेके रोगके कारण, शीघ्र ही इटलीके समुद्रतटपर चले जानेवाले हैं; इसलिये आप शीघ्र ही चलिए।" इस प्रकार १ दिसम्बरको, डा० किताके साथ, दोपहरकी गाड़ीसे, मैं मारबुर्गके लिए चल पड़ा। आज दिन था; इसलिए खेत, गाँव, पहाड़, सभी खूब दिखाई पड़े। आज, एक जगह, खेतोंमें, बैलोंको हल जोतते देखा! फ्रांस और इंगलैंडमें सिर्फ़ घोड़ोंका ही हल जोतते देखा था। दो घंटेकी यात्रा समाप्तकर मारबुर्ग पहुँच गये।

मारबुर्ग ४०, ५० हज़ारका एक छोटा-सा शहर है। शहरका पुराना सामन्तशाही महल और कितने ही घर तथा गिर्जे पहाड़के

ढलावपर बसे हुए हैं। पहाड़ और उसके नीचे सर्वत्र वृक्षों और वनस्पतियोंकी अधिकता है। इस जाड़ेमें देवदारको छोड़कर बाक़ी सभी वृक्ष पत्तोंसे शून्य हैं। नगरकी स्वच्छता और सफ़ाईके बारेमें तो क्या कहना! शहरकी ओर बढ़ते हुए यह बात मालूम हुई कि, यहाँ अनेक स्त्रियाँ लम्बे-लम्बे सुनहले केश रखती हैं। आजकल इंगलैंड, फ्रांस (और जर्मनीके अधिकांश स्थानोंमें स्त्रियोंने बालोंको कटा डाला है। किसी भी स्त्रीके सारे बाल देखनेमें आश्चर्य मालूम होता है! पता लगानेसे मालूम हुआ, मारबुर्गके आसपास, देहातोंमें, अभी "सनातनी" स्त्रियाँ मिलती हैं! यह अपने केशोंको, चाँदपर, जूड़ेकी शक्लमें वैसे ही बाँधती हैं, जैसे चम्पारनकी देहाती, पुरानी चालकी स्त्रियाँ! जहाँ मैं इन्हें अचम्भेसे देख रहा था, वहाँ यह भी, जहाँ-तहाँ पचीसोंकी संख्यामें खड़ी मेरे पीले वस्त्रोंको देख रही थीं!

होटलमें थोड़ी देर विश्राम करनेके बाद मैं, कितायामाके साथ आचार्य ओतोके घरपर गया, जो थोड़ा चढ़कर पहाड़पर था। छ: बज गये थे; दो घंटे रात बीत चुकी थी; सर्दी भी ख़ूब थी; तो भी यूरोपमें घरोंको गर्म रखनेका रवाज है; जिसके कारण बाहर सर्दीके मारे ठिठुरते हुएको भी घरमें कोट-टोपी उतारनी पड़ती है। घंटी बजाते ही नौकरानी आयी। डा० किताने मेरे आनेकी खबर भेजी। थोड़ी ही देरमें दीर्घ-काय श्वेतश्मश्रुकेशधारी तुंग आर्य-नास आचार्य ओतो सीढ़ियोंपर सामने थे। देखा, शरीर कुछ दुर्बल था। मालूम हुआ, इधर स्वास्थ्य ठीक नहीं था। सत्तरके ऊपरका शरीर था; तो भी कमर झुकी नहीं थी! स्वागतके बाद उनकी बैठकमें गया। वार्त्तालाप आरम्भ हुआ, तो पूरे पाँच घंटे तक होता रहा! समय समाप्त होता जाता था; किन्तु हमारी बात नहीं समाप्त होती थी! मैंने भी इधरके कुछ अपने कामोंका ब्योरा सुनाया। आचार्यने यामुना-

चार्यके "सिद्धित्रय"के अपने जर्मन अनुवादकी भी चर्चा की। पूछा—"आपको हमारा देश कैसा दीख पड़ता है ?" मैंने उत्तर दिया—"यद्यपि जाड़ेमें, पतझड़के कारण, देशका पूरा सौन्दर्य मेरी आँखोंसे ओझल है; लेकिन मैं हिमालय जैसे स्थानोंसे परिचित हूँ; इसलिये यह समझनेमें मुझे ज़रा भी दिक़्क़त नहीं कि, गर्मियोंमें यह देश, विशेषकर मारबुर्ग तो नन्दन-कानन रहता होगा।" उन्होंने कहा—"कवीन्द्र रवीन्द्र गर्मियोंमें यहाँ आये थे; उन्होंने भी मारबुर्गके सौन्दर्यकी प्रशंसा की थी।"

मैंने वहाँकी ग्रामीण स्त्रियोंके जूड़ों और बैलके हलोंका ज़िक्र करते कहा कि, "इनमें मुझे ऋग्वेद-कालीन आर्योंके उष्णीप और हलोंकी समानता मालूम होती है।" उन्होंने बतलाया कि, "मेरे बचपनमें, जर्मनामें, सभी हल बैलोंसे ही चलते थे; उस समय घोड़ोंके हल कुछ धनिकोंके शौक़में शामिल थे। ग्रामीण जनता पुरानेपनकी बड़ी भक्त होती है; इसलिये उसके रीति-रवाजोंमें कुछ ऐसी बातोंका मिलना आश्चर्यकर नहीं, जो यूरोपीय और भारतीय आर्योंके सम्मिलित पूर्वजोंमें प्रचलित थीं।" आर्योंकी बात चलते ही वह और मैं, दोनों ही, अनुभव कर रहे थे, मानो, हज़ारों वर्षके बिछुड़े बन्धुओंका प्रेमालाप चल रहा हो! उन्होंने ऋग्वेदके "दधिक्रा" और "नासत्या" शब्दोंपर बात करते हुए कहा—"दधिक्रा" घोड़ेका नाम है; किन्तु दधत् क्रामतीति"की व्युत्पत्ति से नहीं। आरम्भमें आर्योंका, सवारीके लिये, घोड़ा पालना बहुत सन्दिग्ध है। मालूम होता है, आजकलके दक्षिणी रूसके बासिन्दोंकी भाँति जो घोड़ियोंको विशेषकर "कूमिस्" (दहीसे बना एक प्रकारका पेय पदार्थ)के लिये पालते हैं वह भी, दहीके लिये, घोड़ोंको पालते थे; और, "दधिक्रा"में दधि शब्द दहीके लिये ही है।"

मुझे तो दोपहरके बाद खाना ही नहीं था; इसलिये उनके भोजनके समय बैठे-बैठे बात-चीत होती रही। वहीं उन्होंने अपनी वृद्धा बहनसे परिचय कराया। दूसरे दिनके मध्याह्न-भोजनका निमन्त्रण भी मिला। आधी रातको मैं अपने स्थानपर चला गया।

३ दिसम्बरको आचार्य ओतो, अपने शिष्योंसे समुद्रतटपर जानेके लिये, बिदाई लेनेवाले थे। उस दिन वह महात्मा गांधीपर बोले। मैं भी निमन्त्रित किया गया था। चार-पाँच सौ छात्र-छात्राएँ बड़ी व्याख्यान-शालामें, बैठे थे। आचार्यने महात्मा गांधीपर बहुत सुन्दर भाषण दिया। मेरे विषयमें भी कुछ कहा। मेरे व्याख्यानकी आशा भी दिलायी; किन्तु जल्दीके कारण मैं दूसरे ही दिन वहाँसे चल पड़ा; और, समयाभावसे, फिर मारबुर्ग लौटकर न जा सका। वहाँसे हम मारबुर्गके धार्मिक संग्रहालयमें गये। बौद्ध, ब्राह्मण, यहूदी, ईसाई, इस्लाम सभी धर्मोंके ग्रन्थों, मूर्त्तियों, पूजाभाण्डों, चित्रों आदिका यहाँ सुन्दर संग्रह है; और, इन संग्रहोंका उन-उन धर्मावलम्बियोंकी श्रद्धाका खयाल करके सजाया गया है।

३ दिसम्बरको मारबुर्ग विश्वविद्यालयके संस्कृतके प्रोफ़ेसर डाक्टर नोबलसे मिलने गया। वह "सुवर्णप्रभाससूत्र" (एक बौद्ध ग्रन्थ)का, अनेक, पाठ-भेदोंके साथ, सुन्दर संस्करण निकालने जा रहे हैं।

उसी दिन फ्रांकफुर्तसे टेलीफ़ोन आया और मुझे फ्रांकफुर्त लौट आना पड़ा। आज वसु महाशयका "भारतमित्रसभा"में भाषण था। मुझे भी कुछ शब्द कहनेको कहा गया।

यहीं महाबोधिके ट्रस्टियोंका पत्र मिला। उन्होंने मेरे शीघ्र लौटनेके इरादेपर खेद प्रकट किया था; और, लिखा था कि,

"आप जाड़ेभर यूरोपमें रहकर फिर अमेरिका होते हुए लौटें।" मैंने अस्वीकृतिका पत्र लिख दिया।

फ्रांकफुर्तका विश्वविद्यालय जर्मनीके प्रसिद्ध विश्वविद्यालयोंमें है। अर्थशास्त्र और समाज-शास्त्रमें विशेष ख्याति रखता है। यहाँ चार हज़ारसे अधिक विद्यार्थी पढ़ते हैं! जर्मनीमें आठ वर्षकी शिक्षा, सभी लड़के-लड़कियों के लिये, अनिवार्य है। चार वर्ष वह प्राथमिक श्रेणीमें पढ़ते हैं, फिर माध्यमिक श्रेणीमें, ऊपरकी पाँच वर्षकी, पढ़ाई ऐच्छिक है। इस प्रकार १३ वर्षमें माध्यमिक शिक्षा या मैट्रिक्युलेशन परीक्षा समाप्त होती है, जिसमें ६ वर्षसे १६ वर्षकी उम्र तकका समय लगता है। फिर तीन वर्ष तक विश्वविद्यालयमें, अधिकारीके तौरपर, पढ़ना होता है। इसके बाद दो वर्ष Ph. D.में लगता है। हमारे यहाँकी भाँति वहाँ बी० ए०, एम० ए०की डिग्रियाँ नहीं हैं। भारतके किसी विश्वविद्यालयकी डिग्री वहाँ अत्यावश्यक नहीं है। विद्यार्थीको एक छोटा-सा निबन्ध लिखनेको कहा जाता है, जिसमें उसके उस विषयके साधारण ज्ञानका परिचय मिल जाता है। फिर वह तीन या चार सेमिस्टर या डेढ़-दो वर्षमें अपने Ph. D.का निबन्ध दे सकता है। निबन्धको प्रोफ़ेसर लोग एक दो बार कुछ और संशोधन करनेके लिये लौटाते हैं; फिर स्वीकृत हो जानेपर भी तब तक उपाधि नहीं मिल सकती, जब तक कि, निबन्धको छपवाकर उसकी ढाई सौ कापियाँ अपने विश्वविद्यालयको नहीं दिया जाता। निबन्धके छपवानेका ऐसा ही कड़ा नियम फ्रांसमें भी है। अच्छे योग्य आदमीके लिये, निबन्धके समयको, यदि प्रोफ़ेसर चाहें, तो और भी कम कर सकते हैं।

११ दिसम्बरको फ्रांकफुर्त नगरका पुराना भाग देखने गये। मेरे साथ इन्द्रजीके अतिरिक्त उनके गृहपति श्रीयुत् बोमान् भी

थे। बोमान् महाशय जर्मन हैं। उनकी स्त्री एक अमेरिकन हैं। पहले वह बहुत धनी स्त्री थीं। राज-महलकेसे सुन्दर मकानमें, कितने ही नौकरोंके साथ, रहती थीं, बैंकमें बहुत-सा रुपया जमा था। १६२५-२६ ई०में जर्मन सिक्केका मोल गिर गया; और, मार्क (जो आज एक रुपयेके बराबर है)का दाम चौथाई पैसेके भी बराबर नहीं रह गया! उसी समय, जर्मनीके और धनिकोंकी भाँति, इनका भी नक़द रुपया स्वाहा हो गया! रह गया मकान, जिसके ८-९ कमरोंको किरायेपर देकर आजकल दोनों दम्पती गुज़ारा कर रहे हैं। ख़ैर। हमलोग पुरानी बस्तीमें पहले उस मकानको देखने गये, जिसमें महाकवि गेटे पैदा हुए थे। उनकी स्मृतिकी सारी चीज़ोंका इसमें एक अच्छा संग्रहालय है। पासमें उस काफ़ीकी दूकानको भी दिखलाया गया, जिसमें कवि अक्सर चाय पिया करते थे। यह भाग बनारसकी पुरानी गलियोंका स्मरण दिलाता है; विशेषतः पाँच-अँगुली-गली (Funf finger gasse), जो ठीक कचौड़ीगली और ब्रह्मनालकी गलियोंका नमूना है। एक छोटेसे आँगनसे (जोकि, हथेली-सा है) पाँच पतली गलियाँ पाँचो ओरको गयी हैं। शहर देखनेको माइन् (Main) नदीके किनारेसे लौटे। नगर नदीके दोनों ओर बसा है। नदीके तटकी सड़कपर देखा, जगह-जगह हज़ारों देवदारकी हरी डालियाँ, क्रिसमस्के त्योहारके लिये, विक्रयार्थ रखी हुई हैं। एक बजे दिनको भी ठंढकके मारे नाक-कान लाल और हाथ ठिठुर रहे थे।

शामको मारबुर्ग विश्वविद्यालयके धर्म-विभागके अध्यक्ष डाक्टर हेन्‌रिख् फ्रिक आये। धर्मोंके भविष्यपर वार्त्तालाप हुआ। उन्होंने कहा—"भूतकालमें एक दूसरेका खण्डन करने आदिकी जो धर्मोंकी नीति रही है, उसे हमें छोड़ना चाहिये। हमें एक

दूसरेके भावोंको श्रद्धापूर्वक जाननेकी कोशिश करनी चाहिये।" मैंने कहा—"उससे भी अधिक आवश्यकता इसकी है कि, धर्म खामखाह सभी बातोंमें दखल न दे। किसी भी नये तरीक़ेको (जो मनुष्यजातिकी आर्थिक या सामाजिक कठिनाइयोंको दूर करनेका भाव अपनेमें रखता है) पूरा मौक़ा देना चाहिये। झट से काफ़िर और नास्तिक कहकर उसे न दबाना चाहिये।" उन्होंने इस बातसे अपनी सहमति प्रकटकर कहा—"जर्मनीमें, आरम्भिक दिनोंमें, समाजवादियोंके साथ, ईसाई पुरोहितोंने ऐसा ही बर्तावकर अधिकांश श्रमजीवियोंको अपना शत्रु बना लिया।" उन्होंने यह भी कहा कि, "कुछ वर्षोंसे मारबुर्गमें हमने दूसरे देशोंके विश्वविद्यालयोंके धर्मशास्त्रके विद्यार्थियोंको लेना और अपने यहाँके विद्यार्थियोंको वहाँ भेजना शुरू किया है। यह क्रम बहुत ही सफल हुआ है। अब हम चाहते हैं कि, इस क्रमको ईसाई दुनिया तक ही न परिसीमित रखकर अन्य धर्मों तक भी जारी करना चाहिये। हम चाहते हैं कि, हमारे विद्यार्थी पूर्वके बौद्ध-विश्वविद्यालयोंमें पढ़ने जायँ और वहाँके विद्यार्थी हमारे यहाँ आवें।"

१० दिसम्बरको बौद्धधर्मपर मेरा एक व्याख्यान हुआ। श्रीयुत सी० टी० स्ट्रास दुभाषिये थे। ८० वर्षकी उम्र है; लेकिन खूब मज़बूत हैं। प्राय: चालीस वर्षसे बौद्ध हैं।

डेढ़ सप्ताह तक फ्रांकफुर्तमें श्रीयुत इन्द्रबहादुरजीके साथ रहा। मालूम नहीं हुआ कि, विदेशमें हूँ।

❀ ❀ ❀

१२ दिसम्बरको फ्रांकफुर्तसे मैं बर्लिनके लिये, तीसरे दर्जेमें, रवाना हुआ। २४ मार्क (२४ रुपये) टिकटका दाम और प्राय: ६ घंटोंका सफ़र था। यूरोपमें सभी जगह रेलोंका किराया

हमारे यहाँसे अधिक है। वहाँ एक चौथा दर्जा भी होता है। हमारे यहाँका तीसरा दर्जा भी वस्तुतः चौथा ही दर्जा है। चौथा दर्जा मालूम न हो; इसलिये तीसरे दर्जेका नाम ड्योढ़ा रख दिया गया है! १२ को, सात बजे, जब बर्लिनके अन्टेर्-हाल्ट स्टेशनपर उतरा, तब वहाँ हेर औस्टे और कुमारी बेर्था ढाल्के मिलीं। उनके साथ मोटरसे स्टेशना-बान्-होफ और वहाँसे, बिजलीवाली रेलसे, फ्रोनो गया, जहाँपर महान् जर्मन विचारक और ग्रन्थकार स्वर्गीय डाक्टर पाउल् ढाल्केका बौद्धगेह है। सड़कपर साँचीके द्वारकी छोटी-सी नक़लका पाषाणद्वार था। सीढ़ियों, मकानों, मूर्तियों, सभीको डा० ढाल्केने, खास बौद्ध अर्थोंके साथ, बनवाया था। मकान एक छोटेसे मिट्टीके स्वाभाविक पहाड़पर बने हैं। सीढ़ियोंमें बुद्धकी शिक्षाके आर्य-अष्टाङ्गिक मार्गको चित्रित किया गया है। यह शान्त और एकान्त स्थान देवदारके वृक्षोंके बीच, कई एकड़ भूमिमें, है। १६, १७ कोठरियाँ और कमरे, रहने और ध्यान करनेके लिये, बने हैं। यद्यपि डाक्टर ढाल्केकी असली कृति उनके ग्रन्थ हैं; किन्तु यह भी उनके भावोंका साकार नमूना है। मृत्युसे चालीस वर्ष पूर्व उन्हें बुद्धकी शिक्षासे परिचय हुआ और उनकी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। उन्होंने दर्जनों ग्रन्थ, जर्मन भाषामें लिखे, जिनमेंसे बहुतसे अंग्रेजी, जापानी आदि भाषाओंमें भी अनुवादित हो चुके हैं। वह अपने इस "बुद्धिस्टिशे हौस"को चाहते थे, पश्चिममें बौद्धधर्मका एक केन्द्र बनाना; और, इसे तथा इसी प्रकारके उत्तरी सागरके एक द्वीपपर बनवाये अपने मकानको, इसी कामके लिये, अर्पण कर देना! मृत्यु इतनी अचानक आ गयी कि, वह इसके विषयमें कोई लिखा-पढ़ी न कर सके; और, अब स्थान उनकी बहनों तथा भाईकी स्त्री और लड़कोंकी सम्पत्ति है। यद्यपि ढाल्के-परिवारके सभी लोग सज्जन हैं; तो भी इतने

धनी नहीं कि, इस सम्पत्तिको दान कर सकें। बर्माके भदन्त उत्तम स्थविर इसे खरीद लेना चाहते हैं। यदि, ऐसा हो जाय, तो पश्चिमके एक अद्भुत बौद्ध-विचारककी कीर्ति सुरक्षित हो जाय।

१३ से २५ दिसम्बर तक मेरा यहीं अधिक रहना हुआ। यहाँ उस समय जापानी भिक्षु सकाकिबारा रहते थे। आज तक जितने भी जापानी बौद्धों और भिक्षुओंसे मुझे मिलनेका अवसर मिला, सभीने मुझपर गहरा प्रभाव डाला; और, उनसे मेरी घनिष्ठता हो गयी। जापानने जैसे और बातोंमें तरक्क़ी की है, वैसे ही वहाँके बौद्धमठों और साधुओंने भी की है। सभी सम्प्रदायोंके भिक्षुओंमें दर्जनों जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंडके विश्वविद्यालयोंसे उच्च शिक्षा और उपाधियाँ प्राप्त किये मिलेंगे। डाक्टर बुन्-ज्यो, तकाकुसू, वत्-नबे, उई आदि कितने ही इसके उदाहरण हैं। भिक्षु सकाकिबारा भी पढ़नेके लिये आये हुए हैं।

बर्लिनमें शायद रूस-यात्राके लिये कोशिश करनी थी। एक मित्रने एक भारतीय साम्यवादीको पत्र लिख दिया था। मैं उनके यहाँ गया। वह उस वक़्त दूसरी जगह थे। फ़ोनसे बात शुरू हुई। मैंने सब कहकर यह भी कह दिया कि, "मेरे पास समय थोड़ा है और फ़ोनोंसे रोज़-रोज़ नहीं आ सकता, इसलिये आप आज ज़रूर मुझसे बात करें।" बहुत कहने-सुननेपर उन्होंने, तीन घंटे बाद, एक चायखानेमें मिलनेके लिये कहा। पहले तो मैंने समझा कि, इन तीन घंटोंको, एक दूसरे सज्जनके यहाँ बिता लूँगा; किन्तु संयोगवश वह भी उस समय अपने घरपर न थे! लाचार, उसी चायखानेमें ढाई घंटे पहलेसे ही डटना पड़ा। बेकार ढाई घंटेकी इन्तज़ारी; तिसपर सारा हाल सिगार-सिगरेटके धुवेंसे भरा! एक कोनेमें बैठे रहनेपर भी लोगोंकी नज़र मेरे पीले कपड़ोंपर पड़ा करती थी! ग़र्ज़ यह कि, किसी

तरह, ढाई घंटेको मुश्किलसे बिताया। १०, १५ मिनट और इन्तज़ार करनेपर उक्त सज्जनकी सहकारिणी लड़कीने आकर कहा कि, "महाशय ...को आज काम बहुत है। आप चार दिन बाद आवें !" इस बातको सुनकर मेरे मनकी अवस्थाके बारेमें कुछ न पूछिये। धनिकों और बड़े आदमियोंके परिचयसे मैं हमेशासे ही घृणा करता रहा हूँ, उनके व्यक्तित्वसे नहीं। ऐसा एक ही अवसर पहले भी मिला था।

बोधगयाके मन्दिरका प्रबन्ध बौद्धोंके हाथमें आना चाहिये, इस विषयका प्रस्ताव मैंने बिहारप्रान्तीय कांग्रेस कमिटीसे, १६२२ ई०में, पास कराया था। उसी साल गया कांग्रेसमें भी यह प्रस्ताव रखा जानेवाला था। श्रद्धेय श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद और श्रीयुत ब्रजकिशोरप्रसाद कांग्रेसके सभापति देशबन्धु दाससे मिलकर आये थे। वहाँ बोधगयाके मन्दिरके विषयमें भी बात चली थी। देशबन्धुने बड़ी सहानुभूति दिखलायी थी। आकर उन्होंने मुझसे कहा कि, "देशबन्धुसे मिलिये, हम लोग बात कर आये हैं।" यदि उनकी अधिक प्रेरणा न हुई होती, तो मैं हर्गिज़ वहाँ नहीं जाता। जाकर मैंने सूचना दी। मुझे बैठनेके लिये कह दिया गया। तीन घंटों तक मैं बैठा रहा। बीच-बीचमें खबर दी और उन्होंने ख़ुद भी देखा; किन्तु एक काली कमली-वाले (तब) साधारण साधुका इतने बड़े आदमीको ख़्याल ही कैसे हो सकता था! तीन घंटोंके बाद मैं उठकर चला आया। मुझे अपने ही ऊपर क्रोध आया कि, मैंने अपनी नीतिको बदलकर बड़े आदमीसे मिलनेकी इच्छाको अपने मनमें जगह ही क्यों दी।

सारे जीवनके लिये, उस समय, मुझे एक अच्छा पाठ पढ़नेको मिल गया था; फिर नये पाठकी आवश्यकता नहीं थी।

यू रोपमें आनेपर समयकी पाबन्दी आदिका जो गुण मैंने अन्य ोपीय सज्जनोंमें देखा, उसीके भरोसे मैं वक्त साम्यवादी सज्जनसे भी आशा कर बैठा था। अच्छा ही हुआ, दस वर्ष बाद एक और अच्छी शिक्षा मिली! पीछे, मेरे एक दूसरे परिचित मित्रसे, उन्होंने आनेके लिये कहला भेजा; किन्तु मैंने कहा, "काफ़ी हो गया है!"

जिस समय उक्त घटनासे मेरा मन खिन्न था, उसी समय पता लगा कि, श्रीयुत रामचन्द्रसिंह आज ही बाहरसे बर्लिन लौटे हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव, मैं और रामचन्द्रजी, तीनों एक बार गंगा तटपर बाबू शिवप्रसाद गुप्त (काशी)के यहाँ सोये हुए थे। उस समय रामचन् ़जी जर्मनी जानेकी तैयारी कर रहे थे। सो, फ़ोनसे सूचना देकर मैं अपने जर्मन मित्रके साथ वहाँ पहुँचा। बड़े तपाकसे मिले। वहीं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कमला देवीको भी देखा। रामचन्द्रजी लखनऊके रहनेवाले हैं; और, कमलाजीके पिता पटनामें रहते हैं। पहलेके बर्तावसे जितना हो चित्त दुखित हुआ था, उतना ही, इस समागमसे, आनन्दित हुआ। बात-चीत ४-५ घंटेसे कममें खतम होनेवाली न थी; इसलिये रामचन्द्रजीने कहा कि, मैं आखिरी जंक्शन तक पहुँचा दूँगा।" इस प्रकार मैंने जर्मन मित्रको भेजकर वार्त्तालाप शुरू किया। रामचन्द्रजी प्रोफ़ेसर आइंस्टाइनके आधीन भौतिक शास्त्रका अध्ययन कर रहे हैं। ५, ६ मासमें उनकी डिग्रीका काम तो समाप्त हो जायगा; किन्तु कमलाकी शिक्षाके लिये थोड़े दिन और ठहरना चाहते हैं। यहाँ आनेसे पहले कमला सिर्फ़ थोड़ी-सी हिन्दी जानती थीं। अब जर्मन तो खूब बोलती हैं; किन्तु अंग्रेजी अब भी नहीं जानतीं! साधारण ज्ञान भी उनका बहुत बढ़ गया है; और, क्रियात्मक अध्ययनका अवसर मिलनेसे स्त्रीजाति बन्धिनी समस्याओंपर उनका बहुत अधिक अनुशीलन हो

रहा है। मैंने हँसते हुए कहा—"बड़ा ही अच्छा होगा, यदि कमला देवीको यहाँसे लौटनेपर अंग्रेजीका एक शब्द न आवे!" अंग्रेजी भाषाका जानना, तो भारतमें विद्वत्ताका आवश्यक अंग समझा जाता है!

दो तीन जंकशनोंपर गाड़ी बदलकर हमें अन्तिम गाड़ीपर—जो कि, सीधे फ्रोनो जाती थी—चढ़ाकर रामचन्द्रजी लौट गये। रूस-यात्राके सम्बन्धमें पूछ-ताछ करना उन्हींके ज़िम्मे छोड़ दिया।

१६ दिसम्बरको रामचन्द्रजीसे मालूम हुआ कि, २८ जनवरी तक यदि रहें, तो रूस-यात्राका सस्ता प्रबन्ध हो सकता है। यद्यपि अब मैं यात्राके विचारको छोड़ चुका था; तो भी प्रोफ़ेसर सिल्वें लेवीके परिचय-पत्रके साथ एक पत्र डा० ओल्डेन-बर्ग और एक पत्र डाक्टर चिरबास्कीके पास भेज दिया गया।

२२ दिसम्बरको सीमेन्स कम्पनीके कारखाने देखनेका खास तौरसे, उन्होंने अनुमति माँग ली थी। दोपहर बाद श्रीमती कमला, रामचन्द्रजी और मैं वहाँ पहुँचे। इस कारखानेका एक शहर ही बसा हुआ है? दो वर्ष पूर्व यहाँ एक लाख बीस हज़ार आदमी काम करते थे; आज कल भी अस्सी हज़ार काम करने-वाले हैं। यह बिजलीका सामान बनानेवाला दुनियाका सबसे बड़ा कारखाना है। क़रीब सौ वर्ष पहले यह कारखाना एक छोटेसे रूपमें आरम्भ हुआ। इसके संस्थापक स्वयं तार-यन्त्रके आविष्कारकोंमें थे। इन दिनों हवाई जहाज़, मोटर, फ़ोटो केमरा आदि हज़ारों चीज़ें यहाँ बनती हैं। कारखानेमें ५१ सैकड़ा हिस्सा संस्थापकके परिवारका ही है। हम लोगोंके आफ़िसमें पहुँचनेपर प्रबन्ध-विभागके एक खास सज्जन अपनी मोटरपर बैठाकर हमें कारखाना दिखलाने ले चले। अन्य

जगहोंको दिखलाते हुए उस जगह ले गये, जहाँ एक-एक लाख वोल्ट शक्तिके विद्युत्-यन्त्रोंको कृत्रिम वर्षा और विद्युत्-कड़कमें परीक्षा होती है ! छोटेसे मनुष्यके दिमाग़में कितनी अद्भुत शक्ति है !! कारखानोंके बाद श्रमिकोंके निवास-स्थानों तथा उनके बालकोंकी शिक्षा आदि सम्बन्धी संस्थाओंको भी दिखाया गया। रातको हम लोग लौटे।

रामचन्द्रजीकी बाड़ीवाली एक धनी जर्मन जेनरलकी लड़की हैं। १९२५-२६में इनका भी बैंकमें रखा सारा रुपया कौड़ीका तीन हो गया ! आज कुछ कोठरियोंको किरायेपर लेकर और अपनी ओरसे उन्हें भाड़ेपर देकर गुज़ारा कर रही हैं !

२३ दिसम्बरको हम तीनों बर्लिनके संग्रहालयोंको देखने निकले। पहले फोल्केर्कुण्डे (Volkerkunde में गये। एशियाई विभागके क्युरेटरने एक दूसरे विद्वान्‌को हमारे साथ लगा दिया, वही गाइड बना। एशियासे लाये ला-कोक् संग्रहको भली भाँति देखा, चित्त प्रसन्न हो गया। संग्रह तो महत्त्वपूर्ण है ही, संगृहीत वस्तुओंको सजानेका ढंग भी बहुत ही सुन्दर है। ब्रिटिश म्युज़ियमसे पेरिसके म्युज़ियमोंकी सजावटका ढंग सुन्दर है। उनसे भी सुन्दर यहाँका ढंग है। मध्य एशियाकी मरु-भूमिसे लाये नक़शों और भित्तिचित्रोंके सहारे तीन-चार वैसे ही मन्दिर बना दिये गये हैं। इस एक संग्रहालयको ही देखनेके लिये दो-तीन दिन चाहिये। पुराण-म्युज़ियम आदिको देखकर उस दिन हम फ्रोन लौट गये।

यूरोपने सभी प्रधान-प्रधान शहरोंसे हवाई जहाज़ एक दूसरी जगहको उड़ते हैं। नक़शोंमें उनकी लाइनें, आने-जानेका टाइम टेबल, मुसाफ़िरखाना आदि सबका, रेलोंकी तरह, इन्तज़ाम है। एक दिन श्रीयुत रामचन्द्रके साथ मैं बर्लिनका वैमानिक स्टेशन

देखने गया। एक विशाल मैदानके एक किनारेपर विशाल गृह बने हुए हैं, जहाँ विश्रामगृह, भोजनालय आदि सभीकी अलग-अलग शालाएँ (Salle) हैं। एक बड़े हालके भीतर बीसों छोटे-बड़े हवाई जहाज़ रखे हुए हैं। जगह न होनेसे कुछ जहाज़ बाहर, मैदानमें, पड़े थे। इनमें कुछ माल ढोनेके भी थे। रातका वक्त था। उस वक्त तक विमानोंका आना-जाना समाप्त हो चुका था। मैदानमें बहुत दूरतक लाल-लाल रोशनियाँ लगी हुई थीं। एक नवयुवकने बड़ी भद्रतापूर्वक ले जाकर हमें सभी चीज़ोंको दिखलाया।

२४ दिसम्बरको क्रिस्मस् त्योहारकी सन्ध्या थी। उत्सव आजसे ही आरम्भ था। ढाल्के-परिवारका क्रिस्मस् देखने मैं भी गया। देखा, घरके एक कोनेमें देवदारकी एक हरी शाखा, छोटे वृक्षके रूपमें, खड़ी है, जिसकी टहनियोंमें छोटी-बड़ी फुलझड़ियाँ, चमकीले लट्टू और विद्युत्प्रदीप लटक रहे हैं। लड़के फुलझड़ियोंमें आग लगाकर तमाशा देख रहे थे। फुलझड़ियोंके बाद भेंटोंका मुलाहिज़ा शुरू हुआ। १४ वर्षके तरुण ढाल्केके मित्रों और सम्बन्धियोंने बहुतसी भेंटें उसके लिये भेजी थीं, जिनमें कोट, पतलून, टोपी, मिठाई, फाउंटेनपेन, डाकखानेके टिकटोंका संग्रह और उसकी कापी तथा और कितनी ही चीज़ें थीं। उनमें एक हथौड़ी भी थी, जिसके खोखले हैंडलमें छोटे-बड़े अनेक पेचकश, आरी, रेती आदि चीज़ें थीं। उनके मामा भी वहाँ आये हुए थे। वह अपनी बहनके लिये एक समूरी कोट लाये थे। इसी तरह अन्य व्यक्तियोंकी भी भेंटें थीं। घरवालोंने भी एक दूसरेकी भेंटें प्रदान कीं। फिर मिठाइयोंका भोज और चायका पान शुरू हुआ। पीछे बातें हुईं। मैंने पूछा—"ईसाई होनेसे पूर्व जर्मन लोगोंके कौनसे बड़े त्योहार थे?" उत्तर मिला: "सोन्-वेन्दे (Sonn-wende), वर्षके उन दो दिनोंमें, जब क

सूर्य विषुवत् रेखासे उत्तर और दक्षिण जाता था अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन।" इनमें पुराने भारतीय आर्योंके पर्वोंकी समानतासे आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं; क्योंकि दो सौ पीढ़ियोंके पूर्व दोनों जातियोंके पूर्वज एक ही थे। फ़र्क़ इतना ही रहा कि, जहाँ भारतीय हिन्दू आर्योंके दिमाग़से निकले धर्मों और परम्पराओंपर अधिक आरुढ़ रहे (जिससे नाक, रंग, क़दका अधिकांश खोकर भी वह अपने पूर्वजोंके पर्वों, उत्सवों और इतिहासोंकी बहुतसी बातें क़ायम रख सके), वहाँ यूरोपीय आर्योंने ईसाई धर्मको स्वीकार कर लिया। यद्यपि ईसाकी शिक्षामें सेमेटिक अनुदारताकी गन्ध तक नहीं है, तो भी उसे यहूदियोंकी अनुदार सेमेटिक परम्पराने इतना जकड़ दिया था कि, उसने आर्योंकी प्राचीन कितनी ही सुन्दर बातोंका नष्ट कर डालना, अपने धर्मके प्रचारके लिये, अत्यावश्यक समझा!

× × ×

सभी देश इस समय बड़ी आर्थिक कठिनाइयोंमें पड़े हुए हैं; और, उद्योग-धन्धोंमें प्रधान देश तो और भी। जर्मनीकी अवस्था तो और भी ख़राब हो गयी होती, यदि वह इंगलैंडकी भाँति कृषिको बिलकुल जवाब दे चुका होता। जर्मनीमें मैं रेलके स्टेशनोंके बाहर और सड़कोंपर भी लोगोंको टोपी उतारकर भीख माँगते देखता था। मैंने पूछा—"जब यहाँ भीख माँगनेके खिलाफ़ कड़ा क़ानून है, तब यह ऐसा क्यों करते हैं? उत्तर मिला—"क़ानून मनवानेका मतलब है; जेल भेजना। फिर वहाँ भी तो खाना देना पड़ेगा!"

जनसत्ताक साम्यवादियोंकी प्रतीक्षासे ऊबकर इधर नाज़ी-दलसे जनता अधिक आशा करने लगी थी; किन्तु स्वर्गसुखकी आशाको जल्दी समीप आते न देखकर कुछ उदासीन होने लगी।

पिछले चुनावमें नाज़ियोंके सदस्योंकी संख्या कम होनेसे इधर कितने ही धनिकोंने नाज़ियोंको आर्थिक सहायता देनी बन्दकर दी है। जगह-जगह भूरी वर्दी पहने हिटलरके नाज़ी, अपने दलके लिये, चन्दा माँगते देखे जाते हैं! लोग कहते हैं, "यदि नाज़ीदलने, निकट भविष्यमें, कोई सफलता न दिखलायी, तो उसका सितारा अस्त होने जा रहा है!"

२५ दिसम्बरको ६२ मार्क (६२ रुपये) देकर हमने मार्सेइ (मार्सेल्)का टिकट लिया। ३० दिसम्बरको ही फेलिस् रूसेल् जहाज़ रवाना होनेवाला था। आख़िर रूस जाना भी नहीं हो सका। यदि पहले मालूम होता कि, जाना न हो सकेगा, तो इन डेढ़ महीनोंमें जर्मनीके और नगरों एवम् आस्ट्रिया, इटाली और स्वीज़र्लैंड भी हो आया होता। जर्मनीके कई मित्रों और स्वीज़र्लैंडकी देवी फ्रोबे काप्तेन्को भी मुझे हताश करना पड़ा! देवीजीके यहाँ जानेकी तो मैं अन्तिम दिन तक आशा करता रहा!

ट्रेन बर्लिन्से सबेरे ही चली। मेरे डब्बेमें एक जर्मन महिला बैठी थीं। उनके कोटमें लगे तीन बाणोंवाले बिल्लेको देखकर मैं समझ गया, यह सोशल्डमोक्रेट (जनसत्ताक साम्यवादी) या नरम साम्यवादी दलकी सदस्या हैं। अंग्रेज़ी भी जानती थीं। इन्होंने जर्मनीमें साम्यवादकी सफलता न होनेका सारा दोष कम्युनिस्टोंपर मढ़ा। लेकिन कम्युनिस्ट कहते हैं—हंगरी, जर्मनी, दोनोंमें साम्यवादके सफल न होनेके कारण जनसत्ताक साम्यवादियोंकी नीति निर्जीव हुई। जिस वक्त् लोगोंका उनपर विश्वास था और सारी शक्ति उनके हाथमें थी, उस समय उन्होंने पूँजीवादियोंकी व्यक्तिगत सम्पति आदिको यह कहकर नष्ट नहीं करना चाहा कि, धीरे-धीरे समझा-बुझाकर यह काम

किया जा सकेगा। क्या ज़रूरत है समाजमें एकदम क्रान्ति पैदा करनेकी ? जनताके लिये चार-छ: वर्ष प्रतीक्षा करना बहुत है। वह हमेशा अपने कष्टोंको, तुम्हारे क़यामतके बाद मिलनेवाले सुखोंकी आशामें, थोड़े ही सहती रहेगी ! उसी समय एच० जी० वेल्सने, बिलायतके मज़दूर-पत्र "डेली-हेरल्ड"में, नवसमाज-संगठनके साम्यवादी उद्देशोंकी एक तालिका देकर सभी उदार-चेता पुरुषोंसे उसके लिये काम करनेकी अपील की थी। इसके उत्तरमें आक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कोल महाशयने जो लिखा था, उसका मतलब यह था कि, महादेव बाबाकी बारात कभी किसी संग्राममें सफलता नहीं प्राप्त कर सकती ! नरमदलियों, अधकचरे साम्यवादियों और शुद्ध साम्य-वादियोंका सम्मिलित दल कैसे एक नये समाज और लोकका निर्माण कर सकता है, जब कि, उनके सोचने, करने आदिके ढंग एक नहीं हैं ? उन्होंने यह भी लिखा था कि, रूसमें नव-निर्माणकी सफलताका कारण साम्यवादियोंकी एकमनस्कता और डिसिप्लन् थी; और, हंगरी तथा जर्मनीमें असफलताका कारण उनका महादेव बाबाकी बारात बनना था।

फ्रांकफ़ुर्तमें तीन दिन रहकर हम मार्सेलको रवाना हो गये। पेरिससे भेजे तिब्बती चित्र तब तक मारबुर्ग नहीं पहुँचे थे। मैंने टामस् कुक्को लिखकर ठीक कर लिया था कि, आनेपर उन्हें वह पटना म्युज़ियमको भेज दें।

३० दिसम्बरकी चार बजे शामको फ्रेंच जहाज़ फ़ेलिस रूसेलसे मैं लंकाके लिये रवाना हुआ।

× × ×

मेरे एक भारतीय मित्रने, जर्मनीसे, अपने ८ मार्च १९३३के पत्रमें लिखा है—'यहाँपर इन दिनों नाज़ियोंका राज्य है। हिटलर चांसलर हो गये हैं। इस चुनावमें नाज़ियोंकी ही जीत रही है। साम्यवादी लोग बुरी तरह दबाये जा रहे हैं। लगभग दस हज़ार साम्यवादी जेलोंमें बन्द हैं! उनके अखबार बन्द कर दिये गये हैं। व्याख्यान, सभा तथा जुलूस आदिकी स्वतन्त्रता उनसे छीन ली गयी है। वह रेडियोका प्रयोग, प्रचारके लिये, नहीं कर सकते। कई जगहोंमें नाज़ी पुलिस और कम्युनिस्टोंमें मुठभेड़ हो गयी है। बहुत लोग हताहत हुए हैं! इस समयकी नाज़ी सरकार कम्युनिस्टोंको नेस्तनाबूद करनेपर उतारू है। पुलिसको मदद करनेके लिये नाज़ी लोग अतिरिक्त पुलिसके तौरपर भर्ती किये गये हैं। जहाँ देखिये, वहीं नाज़ी लोग दिखाई पड़ते हैं। आजकल उन्हींका बोलबाला है। (सोशल) डेमोक्रेट लोग भी कम्युनिस्टोंकी तरह, उक्त हक़ोंसे वंचित किये गये हैं। इन सबके होते भी आशा कम ही है।"

मेरे मित्र अर्थशास्त्रके पण्डित हैं; और, साम्यवादी नहीं हैं। उनका यह लिखना कि, नाज़ियोंके यह सब कुछ करनेपर भी उनकी सफलताकी 'आशा कम ही है' खास मतलब रखता है।

पूँजीवादमें चीज़ोंको उत्पत्ति सिर्फ़ नफ़ेके लिये की जाती है, लोगोंकी आवश्यकताको पूरी करनेके लिये नहीं। इससे उलटे साम्यवाद, चीज़ोंकी उत्पत्ति, लोगोंकी आवश्यकता पूरी करनेके लिये करता है। सारा राष्ट्र उसका परिवार है। परिवारके प्रत्येक व्यक्ति को पहननेके लिये कपड़े, खानेके लिये अन्न, रहनेके लिये मकान तथा जीवनकी दूसरी आवश्यक चीज़ें अपेक्षित हैं। साम्यवाद उन चीज़ोंको मुहय्या करके अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझता है। उसके परिवारके सभी व्यक्तियोंको काम और

भागके सामान मिलें; और, बस। पूँजीवादी क्या कर रहे हैं ? अमेरिकामें, लाखों मन गेहूँमें इसलिये आग लगायी जा रही है कि, गेहूँ कम होनेसे बचे गेहूँ का दाम अधिक मिले और व्यापारी-को नफ़ा हो, चाहे उसी मुल्कमें हज़ारों बेरोज़गार स्त्री-पुरुष भूखों मरें ! वही बात, ब्राजिलमें, काफ़ीकी लाखों बोरियाँ समुद्रमें डुबोकर तथा कारखानोंके बने करोड़ोंके मालको जला-सड़ाकर की जा रही है ! बाजारमें ग्राहकोंकी माँगसे अधिक माल हो जानेपर जब पूँजीपतियोंके लिये नफ़ेपर माल बेचना असम्भव हो जाता है, तब वह अपने कारखानोंको बन्दकर हज़ारों श्रमजीवियों और पचासों हज़ार उनके परिवारके व्यक्तियोंको भूखों मरनेके लिये बाध्य करता है ! जैसे साइकिल जब तक चलती है, तभी तक वह गिरनेसे बची रह सकती है, वैसे ही पूँजीवाद भी तभी चल सकता है, जब तक उसे नफ़ा होता रहता है। नफ़ेके लिये बाज़ारकी आवश्यकता है। दुनियाके सभी बाज़ार मालूम हैं; उनका कोई अंश अज्ञात नहीं है। इधर दुनियाके सभी देशोंमें नये कारखानोंकी बाढ़ आ रही है, जिसके साथ ही साथ वह अपने-अपने बाज़ारोंमें दूसरेका माल न आने देनेके लिये चुंगीकी दीवार और सेना बढ़ा रहे हैं ! पूँजी-वादके उक्त दोषोंके कारण संसारका वर्त्तमान् अर्थसंकट उपस्थित हुआ है !

जर्मनी उद्योग-धन्धेमें बहुत आगे बढ़ा हुआ देश है। हिटलर कम्युनिस्टों और साम्यवादियोंका उच्छेद कर सकते हैं और बन्द कारखानोंको भी चालू करा सकते हैं; लेकिन फिर सवाल रहेगा—नया बाज़ार कहाँसे आवे, किनके ग्राहकोंको छीना जाय ? जब तक इसका उपाय नहीं, तब तक अन्धे होकर कम्युनिस्टोंकी हत्या करने एवम् उससे भी पागलपनकी बात—संसारके व्यापारकी कुंजी, यहूदी जातिको सताकर, अपने रहे-सहे वैदेशिक व्यापार-

को भी चौपट करके, जर्मनीके लिये, अच्छे दिनोंकी आशा नहीं हो सकती। यदि जर्मनी नफ़ेका ख़याल छोड़कर अपने ४ करोड़ आदमियोंके लिये जीवनकी सभी अपेक्षित वस्तुओंको ही प्रस्तुत करनेका इरादा कर ले, तो विद्या, संगठन, शक्ति आदि द्वारा वह शीघ्र सुखी देश हो जाय। किन्तु यह साम्यवाद हो जायगा, जिसे कि, हिट्लरका नाज़ी दल नेस्तनाबूद करना चाहता है! बरस—दो बरस, जर्मन प्रजा हिट्लरकी प्रतीक्षा जरूर करेगी; किन्तु स्थायी विजय उसी दलकी होगी, जो देशकी आर्थिक समस्याओंको, स्थायी रूपसे, हल कर सकेगा।